योगसिद्ध ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मलीन सत्पुरुष
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद सद्गुरुदेव
स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज का
जीवन सौरभ

योग सिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद
स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज का

जीवन सौरभ

योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

अनुक्रम

प्रास्ताविक

संसार ताप से तप्त जीवों में शांति का संचार करने वाले, अनादिकाल से अज्ञान के गहन अन्धकार में भटकते हुए जीवों को ज्ञान का प्रकाश देकर सही दिशा बताने वाले, परमात्म-प्राप्तिरूपी मंजिल को तय करने के लिए समय-समय पर योग्य मार्गदर्शन देते हुए परम लक्ष्य तक ले जाने वाले सर्वहितचिंतक, ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों की महिमा अवर्णनीय है।

वे महापुरुष केवल दिशा ही नहीं बताते वरन् चलने के लिए पगडंडी भी बना देते हैं, चलना भी सिखाते हैं, उंगली भी पकड़ाते हैं और हम उनकी उंगली अगर छोड़ भी दें तो करुणा-कृपा की वृष्टि करते हुए वे हमें ऊपर भी उठा लेते हैं। जैसे माता-पिता अपने बालक को कन्धे पर उठाकर यात्रा पूरी करवाते हैं वैसे ही वे कृपालु महापुरुष हमारी आध्यात्मिक यात्रा को पूर्ण कर देते हैं। माता-पिता की तरह कदम-कदम पर हमारी संभाल रखने वाले, सर्वहितचिंतक, समता के सिंहासन पर बैठाने वाले ऐसे विरल संतों को लाख-लाख वंदन....

ऐसे महापुरुषों की कृपा से जीव रजो-तमोगुण के प्रभाव से छूटकर ऊर्ध्वगामी होता है, जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा तृप्त होने लगती है, जपियों का जप सिद्ध होने लगता है, तपियों का तप फलने लगता है, योगियों का योग सफल होने लगता है। ऐसे महापुरुषों के प्रभाव से समग्र वातावरण में पवित्रता, उत्साह, सात्त्विकता एवं आनंद की लहर छा जाती है। इतना ही नहीं, वरन् उनकी संतरूपी शीतल गंगा में अवगाहन करके जीव के त्रितापों का शमन हो जाता है एवं वह जन्म-मरण की शृंखला से छूट जाता है।

अपने स्वरूप में जगे हुए ऐसे महापुरुषों की करुणामयी शीतल छाया में संसार के दुःखों से ग्रस्त जीवों को परम शांति मिलती है। उनके प्रेम से परिपूर्ण नेत्रों से अविरत अमीमय वृष्टि होती रहती है। उनकी अमृतमयी वाणी जीवों के हृदय में आनंद एवं माधुर्य का संचार करती है। उनके पावन करकमल सदैव शुभ संकल्पों के आशीर्वाद देते हुए अनेकों पतितों को पावन कर देते हैं। उनकी चरणरज से भूमि तीर्थत्व को प्राप्त कर लेती है। उनकी कृपादृष्टि में आने वाले जड़ पदार्थ भी जब कालांतर में जीवत्व को मिटाकर ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेते हैं तो मनुष्य की तो बात ही क्या? किंतु ऐसे महापुरुष हजारों में तो कहाँ, लाखों-करोड़ों में भी विरले ही होते हैं।

भगवान श्री कृष्ण ने भगवदगीता में कहा भी हैः

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।

'बहुत जन्मों के बाद तत्त्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी पुरुष 'सब कुछ वासुदेव ही है' - इस प्रकार मुझको भजता है। वह महात्मा अति दुर्लभ है।'

(गीताः 7.19)

ऐसे ब्रह्माकार वृत्ति में स्थित हुए महात्माओं के दर्शन की महिमा का वर्णन करते हुए संत कबीर ने कहा हैः

अलख पुरुष की आरसी साधु का ही देह।
लखा जो चाहे अलख को इन्हीं में तू लख ले।।

'परमात्मा के साथ एकरूप हो गये ब्रह्म-साक्षात्कारी महापुरुष की देह एक दर्पण के समान है, जिसमें आप अलख पुरुष (परमात्मा) के दर्शन कर सकते हो।'

गुरु नानक जी ने भी संतो की महिमा का वर्णन करते हुए कहा हैः

संत की महिमा वेद न जाने।
जेता जाने तेता बखाने।।

संसार का सच्चा कल्याण संतों के द्वारा ही हो सकता है। ऐसे महापुरुषों का पूरा जीवन ही **'बहुजनहिता बहुजनसुखाय'** होता है। संसार के जीवों को पाप में से पुण्य की तरफ, असत् में से सत् की तरफ, अन्धकार में से प्रकाश की तरफ एवं नश्वर में से शाश्वत की तरफ ले जाने वाले संतों के दिव्य कार्य एवं उपदेशों का अनुसरण करने से साधक के जीवन में संयम, सदाचार, साहस, शक्ति, उत्साह, प्रसन्नता जैसे अनेक दैवी गुणों का विकास होता है।

जब-जब समाज में से संयम, सदाचार, सत्य, नीति आदि लुप्त होने लगते हैं एवं मनुष्य अपने अमूल्य जीवन को विषय-विकारों में ही गँवाने लगता है तब-तब इस धरा पर संतों का अवतरण होता है। वैसे तो अलग-अलग समय में अन्य देशों में भी सूफी फकीरों, पैगंबरों या प्रभु के प्यारे भक्तों ने अपनी करुणा कृपा से मानवकल्याण के लिए निःस्वार्थ कर्म किये हैं, फिर भी यह भारत भूमि इस विषय में विषय भाग्यशाली रही है। जब स्वामी विवेकानन्द ने अपनी पहली अमेरिका की यात्रा के बाद सन् 1896 में स्वदेशगमन किया तब एक पत्रकार ने उन्हें एक खूब ही सीधा एवं सरल प्रश्न पूछाः

"स्वामी जी ! आप पाश्चात्य जगत की प्रगति, विकास एवं विज्ञान सभी देखकर आये हैं तो अब भारत के लिए आपकी धारणा कैसी बनी है?"

पत्रकार को ऐसा ख्याल था कि स्वामी जी भारत के विषय में कुछ घटिया बोलेंगे। किन्तु स्वामी विवेकानंद ने खूब दृढ़तापूर्वक जवाब दियाः

"साढ़े तीन वर्ष पूर्व जब मैंने विदेश प्रस्थान किया था तब मैं भारत को मात्र अपना देश, अपनी मातृभूमि समझता था और अब, जब मैं अमेरिका जाकर वहाँ के समाज एवं जीवन-पद्धति को देखकर आया हूँ तो अब भारत मेरे लिए केवल मेरा देश या मेरी मातृभूमि ही नहीं बल्कि एक दिव्य भूमि, देवभूमि, पवित्र भूमि, पूजनीय भूमि बन गयी है। यह धरा प्राचीन युग से ही संत-परंपरा से सुशोभित है।"

ऐसी ही पावन भूमि एवं ज्ञानी महापुरुषों की महिमा का वर्णन करते हुए 'नारदभक्तिसूत्र' में लिखा हैः

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि
सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि।।69।।

'(ज्ञानी) तीर्थों को तीर्थत्व प्रदान करते हैं, कर्मों को पावित्र्य प्रदान करते हैं, शास्त्रों को शास्त्रत्व प्रदान करते हैं।' ज्ञानी जहाँ रहते हैं वह देश भी पुण्यतीर्थ बन जाता है। उनका उपदेश शास्त्र बन जाता है एवं उनके कर्म सत्कर्म बन जाते हैं।

ऐसे ही महापुरुषों के प्रेरणात्मक जीवनचरित्र की महिमा का बयान करते हुए महात्मा दादू के शिष्य संत सुंदरदास ने कहा हैः

"भगवान के दर्शन करने पर भी संदेह पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता, किन्तु भगवान की कथा सुनने से भगवान में श्रद्धा बढ़ती है और उसकी अपेक्षा भी भगवद् प्राप्त महात्माओं का जीवनचरित्र एवं सत्संग पढ़ने तथा सुनने से भक्ति का प्रागट्य शीघ्र हो जाता है।"

नारेश्वरवाले श्री रंगअवधूतजी महाराज ने भी अपने जीवन पर पड़े हुए, संतों के जीवनचरित्र के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा हैः

"मुझे संतों का जीवनचरित्र पढ़ना अभी भी बहुत अच्छा लगता है। संत अर्थात् जिनके जन्म-मरण के चक्र का अंत हो गया हो, जिनके सत्संग के ज्ञान से हमारे जन्म-मरण का अंत हो जाता है... कर्तापने के भाव का अंत आ जाता हो- ऐसा ज्ञान देनेवाले को संत कहते हैं। संतों के जीवनचरित्रों ने ही मुझे भगवद् प्राप्ति की प्रेरणा दी थी।"

ऐसी जीवन्मुक्त महाविभूतियों के लिए श्री अर्जुनदेव ने गाया हैः

आपि मुकतु मुकतु करै संसारु।
नानक तिसु जन कउ सदा नमसकारू।।

केवल प्राचीन समय में ही संत-महापुरुषों का अवतरण हुआ हो ऐसी बात नहीं है। अर्वाचीन समय में भी आध्यात्मिक ऊँचाईवाले अनेक संत, ऋषि, महर्षि हो गये हैं। उन्हीं में से एक थे विश्ववंदनीय प्रातः स्मरणीय श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज। उन्होंने सत्-चित्-आनंद की पराकाष्ठास्वरूप परमानंद को पाया था एवं अनेक साधकों को इसी दिशा की ओर मोड़ा था। उनका जीवन पृथ्वी के समस्त जीवों के लिए दिव्य प्रेरणास्रोत था। उनकी प्रत्येक चेष्टा समष्टि के हित के लिए ही थी। उनके दर्शनमात्र से प्रसन्नता उत्पन्न हो जाती थी, निराशा के बादल छँट जाते थे, हताश हुए लोगों में उत्साह का संचार हो जाता था एवं उलझे हुओं की उलझनें दूर होकर उनमें नयी चेतना छा जाती थी। उनका सम्पूर्ण जीवन ही मानो निष्काम कर्मयोग का मूर्तिमंत स्वरूप था।

लोगों के जीवन में से लुप्त होते धार्मिक संस्कारों को पुनः जगाने के लिए, संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए एवं सोयी हुई आध्यात्मिकता में पुनः प्राण फूँकने के लिए वे आजीवन कार्यरत रहे। उनकी प्रार्थना ही विश्वकल्याण की भावना की द्योतक हैः

'हे भगवान ! सबको सदबुद्धि दो.... शक्ति दो.... आरोग्यता दो... हम सब अपना-अपना कर्त्तव्य पालें एवं सुखी रहें....'

लाखों-लाखों माँ सरस्वती जी भी एकत्रित होकर जिनकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकतीं ऐसे ब्रह्मनिष्ठ, आत्म-साक्षात्कारी महापुरुष, वेदान्त के मूर्तिरूप श्री लीलाशाहजी महाराज के संदर्भ में कुछ भी लिखना मात्र बालचेष्टा ही है। उनकी दिव्य लीला वर्णनातीत है, शब्दातीत है।

उनके अलौकिक व्यक्तित्व को शब्दसीमा में बाँधना असंभव है। वामन भला विराट को कैसे नाप सकता है? गागर में पूरा सागर कैसे समा सकता है?

विशाल महासागर में से मात्र एक बूँद की झलक दिखाने के सिवा और क्या हो सकता है? उनका चरित्र इतना विशाल, गहन एवं उदार है कि उनके विषय में कुछ भी कहना या लिखना उनकी विशालता को मर्यादित कर देने जैसा लगता है।

फिर भी.... अंतर में केवल श्रद्धा रखकर ही गुह्य ब्रह्मविद्या के मूर्तिमंत स्वरूप पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के जीवन के प्रेरक प्रसंगों एवं जिज्ञासुओं के जीवन में ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाली सत्संग-कणिकाओं को यहाँ यथाशक्ति प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास किया जा रहा है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद

स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

एक दिव्य विभूति

जन्म एवं बाल्यकाल

हमारी वैदिक हिन्दू संस्कृति का विकास सिंधु नदी के तट से ही प्रारंभ हुआ है। अनेकों ऋषि-मुनियों ने उसके तट पर तपस्यारत होकर आध्यात्मिकता के शिखरों को सर किया है एवं पूरे विश्व क अपने ज्ञान-प्रकाश से प्रकाशित किया है।

उसी पुण्यसलिला सिंधु नदी के तट पर स्थित सिंध प्रदेश के हैदराबाद जिले के महराब चांडाई नामक गाँव में ब्रह्मक्षत्रिय कुल में परहित चिंतक, धर्मप्रिय एवं पुण्यात्मा टोपणदास गंगाराम का जन्म हुआ था। वे गाँव के सरपंच थे। सरपंच होने के बावजूद उनमें जरा-सा भी अभिमान नहीं था। वे स्वभाव से खूब सरल एवं धार्मिक थे। गाँव के सरपंच होने के नाते वे गाँव के लोगों के हित का हमेशा ध्यान रखते थे। भूल से भी लाँच-रिश्वत का एवं हराम का पैसा गर में न आ जाये इस बात का वे खूब ख्याल रखते थे एवं भूल से भी अपने सरपंच पद का दुरुपयोग नहीं करते थे। गाँव के लोगों के कल्याण के लिए ही वे अपनी समय-शक्ति का उपयोग करते थे। अपनी सत्यनिष्ठा एवं दयालुता तथा प्रेमपूर्ण स्वभाव से उन्होंने लोगों के दिल जीत लिए थे। साधु-संतों के लिए तो पहले से ही उनके हृदय में सम्मान था। इन्हीं सब बातों के फलस्वरूप आगे चलकर उनके घर में दिव्यात्मा का अवतरण हुआ।
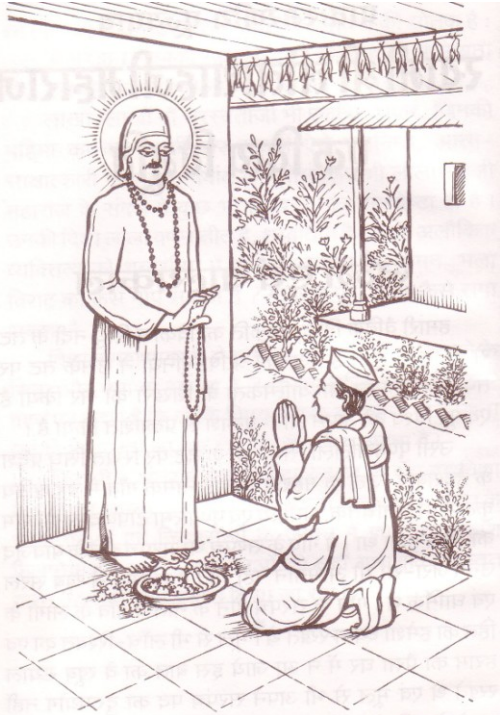
धर्मप्रिय पुण्यात्मा श्री टोपणदास ने अपने कुलगुरु श्री रतन भगत के समक्ष पुत्रप्राप्ति के लिए प्रार्थना की और आशीर्वाद प्राप्त किये।

वैसे तो उनका कुटुंब सभी प्रकार से सुखी था, दो पुत्रियाँ भी थीं, किन्तु एक पुत्र की कमी उन्हें सदैव खटकती रहती थी। उनके भाई के यहाँ भी एक भी पुत्र-समान नहीं थी।

एक बार पुत्रेच्छा से प्रेरित होकर टोपणदास अपने कुलगुरु श्री रतन भगत के दर्शन के लिए पास के गाँव तलहार में गये। उन्होंने खूब विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर एवं मस्तक नवाकर कुलगुरु को अपनी पुत्रेच्छा बतायी। साधु-संतों के पास सच्चे दिल से प्रार्थना करने वाले को उनके अंतर के आशीर्वाद मिल ही जाते हैं। कुलगुरु ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हुए कहाः

"तुम्हें 12 महीने के भीतर पुत्र होगा जो केवल तुम्हारे कुल का ही नहीं परंतु पूरे ब्रह्मक्षत्रिय समाज का नाम रोशन करेगा। जब बालक समझने योग्य हो जाये तब मुझे सौंप देना।"

संत के आशीरवाद फले। रंग-बिरंगे फूलों का सौरभ बिखेरती हुई वसंत ऋतु का आगमन हुआ। सिंधी पंचाग के अनुसार संवत् 1937 के 23 फाल्गुन के शुभ दिवस पर टोपणदास के घर उनकी धर्मपत्नी हेमीबाई के कोख से एक सुपुत्र का जन्म हुआ।

कुल पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च येन।

'जिस कुल में महापुरुष अवतरित होते हैं वह कुल पवित्र हो जाता है। जिस माता के गर्भ से उनका जन्म होता है वह माता कृतार्थ हो जाती है एवं जिस जगह पर वे जन्म लेते हैं वह वसुन्धरा भी पुण्यशालिनी हो जाती है।'

पूरेकुटुंब एवं गाँव में आनन्द की लहर छा गयी। जन्मकुंडली के अनुसार बालक का नाम लीलाराम रखा गया। आगे जाकर यही बालक लीलाराम प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के नाम से सुप्रसिद्ध हुए। स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ने केवल सिंध देश के ही गाँवों में ज्ञान की ज्योति जगाई हो - ऐसी बात नहीं थी, वरन् पूरे भारत में एवं विदेशों में भी सत्शास्त्रों एवं ऋषि-मुनियों द्वारा दिये गये आत्मा की अमरता के दिव्य संदेश को पहुँचाया था। उन्होंने पूरे विश्व को अपना मानकर उसकी सेवा में ही अपना पूरा जीवन लगा दिया था। वे सच्चे देशभक्त एवं सच्चे कर्मयोगी तो थे ही, महान् ज्ञानी भी थे। भगवान सदैव अपने प्यारे भक्तों को अपनी ओर भोजन के लिए विघ्न-बाधाएँ देकर संसार की असारता का भान करवा देते हैं। यही बात श्री लीलारामजी के साथ भी हुई। पाँच वर्ष की अबोध अवस्था में ही सिर पर से माता का साया चला गया तब चाचा एवं चाची समझबाई ने प्रेमपूर्वक उनके लालन-पालन की सारी जवाबदारी अपने ऊपर ले ली। पाँच वर्ष की उम्र में ही उनके पिता टोपणदास कुलगुरु को दिये गये वचन को पूर्ण करने के लिए उन्हें तलहार में कुलगुरु श्री रतन भगत के पास ले गये एवं प्रार्थना की।

"आपके आशीर्वाद से मिले हुए पुत्र को, आपके दिये गये वचन के अनुसार आपके पास लाया हूँ। अब कृपा करके दक्षिणा लेकर बालक मुझे लौटा दें।"

संत का स्वभाव तो दयालु ही होता है। संत रतन भगत भी टोपणदास का दिल नहीं दुखाना चाहते थे। उन्होंने कहाः

"बालक को आज खुशी से भले ही ले जाओ लेकिन वह तुम्हारे घर में हमेशा नहीं रहेगा। योग्य समय आने पर हमारे पास वापस आ ही जायेगा।"

इस प्रकार आशीर्वाद देकर संत ने बालक को पुनः उसके पिता को सौंप दिया। श्री टोपणदास कुलगुरु को प्रणाम करके खुश होते हुए बालक के साथ घर लौटे।

श्री लीलारामजी का बाल्यकाल सिंधु नदी के तट पर ही खिला था। वे मित्रों के साथ कई बार सिंधु नदी में नहाने जाते। नन्हीं उम्र से ही उन्होंने अपनी निडरता एवं दृढ़ मनोबल का परिचय देना शुरु कर दिया था. जब वे नदी में नहाने जाते तब अपने साथ पके हुए आम ले जाते एवं स्नान के बाद सभी मिलकर आम खाने के लिए बैठ जाते।

उस समय श्री लीलारामजी की अदभुत प्रतिभा के दर्शन होते थे। बच्चे एक-दूसरे के साथ शर्त लगाते कि 'पानी में लंबे समय तक डुबकी कौन मार सकता है?' साथ में आये हुए सभी बच्चे हारकर पानी से बाहर निकल आते किन्तु श्री लीलारामजी पानी में ही रहकर अपने मजबूत फेफड़ों एवं हिम्मत का प्रमाण देते।

श्री लीलारामजी जब काफी देर तक पानी से बाहर न आते तब उनके साथी घबरा जाते लेकिन श्री लीलारामजी तो एकाग्रता एवं मस्ती के साथ पानी में डुबकी लगाये हुए बैठे रहते।

श्री लीलारामजी जब पानी से बाहर आते तब उनके साथी पूछतेः "लीलाराम ! तुम्हें क्या हुआ?"

श्री लीलारामजी सहजता से उत्तर देते हुए कहतेः

"मुझे कुछ भी नहीं हुआ। तुम लोगों को घर जाना हो तो जाओ। मैं तो यही बैठता हूँ।"

श्री लीलारामजी पद्मासन लगाकर स्थिर हो जाते। बाल्यकाल से श्री लीलारामजी ने चंचल मन को वश में रखने की कला को हस्तगत कर लिया था। उनके लिए एकाग्रता का अभ्यास सरल था एवं इन्द्रिय-संयम स्वाभाविक। निर्भयता एवं अंतर्मुखता के दैवी गुण उनमें बचपन से ही दृष्टिगोचर होते थे।

जब श्री लीलारामजी दस वर्ष के हुए तब उनके पिता का देहावसान हो गया। अब तो चाचा-चाची ही माता-पिता की तरह उनका ख्याल रखने लगे। टोपणदास के देहत्याग के बाद गाँव के पंचों ने इस नन्हीं सी उम्र में ही श्री लीलारामजी को सरपंच की पदवी देनी चाही किंतु श्री लीलारामजी को भला इन नश्वर पदों का आकर्षण कहाँ से होता? उन्हें तो पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण संतसमागम एवं प्रभुनाम-स्मरण में ही ज्यादा रूचि थी।

उस समय सिंध के सब गाँवों में पढ़ने के लिए पाठशालाओं की व्यवस्था न थी एवं लोगों में भी पढ़ने-बढ़ने की जिज्ञासा नहीं थी। अतः श्री लीलारामजी भी पाठशाला की शिक्षा के लाभ से वंचित रह गये।

जब वे 12 वर्ष के हुए तब उन्हें उनकी बुआ के पुत्र लखुमल की दुकान पर काम करने के लिए जाना पड़ा ताकि वे जगत के व्यवहार एवं दुनियादारी को समझ सकें। किन्तु इस नश्वर जगत के व्यवहार में श्री लीलारामजी का मन जरा भी नहीं लगता था। उन्हें तो संतसेवा एवं गरीबों की मदद में ही मजा आता था। **बहुजनहिताय.....** की कुछ घटनाओं के चमत्कार ने नानकजी की तरह श्री लीलारामजी के जीवन में भी एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया।

सिक्ख धर्म के आदि गुरु नानकदेव के जीवन में भी एक बार ऐसी ही चमत्कारिक घटना घटी थी।

नानकजी जब छोटे थे तब उनके पिता ने उन्हें सुलतानपुर के नवाब दौलतखान की अनाज की दुकान पर अपने बहनोई के साथ काम करने के लिए कहा।

संसारी लोग तो भजन के समय भी भजन नहीं कर पाते। भजन के समय भी उनका मन संसार में ही भटकता है। किन्तु नानकजी जैसे भगवान के प्यारे तो व्यवहार को भी भक्ति बना देते हैं।

नानक जी दुकान में काम करते वक्त कई बार गरीब ग्राहकों को मुफ्त में वस्तुएँ दे देते। यह बात नवाब के कानों तक जाने लगी। गाँव के लोग जाकर नवाब के कान भरतेः "इस प्रकार दुकान कब तक चलेगी? यह लड़का तो आपकी दुकान बरबाद कर देगा।"

एक बार एक ऐसी घटना भी घटी जिससे नवाब को लोगों की बात की सच्चाई को जानना आवश्यक लगने लगा।

उस दिन नानकजी दुकान पर अनाज तौल-तौलकर एक ग्राहक के थैले में डाल रहे थे। '1... 2....3....4....' इस प्रकार संख्या की गिनती करते जब संख्या 13 पर पहुँची तो फिर आगे 14 तक न बढ़ सकी क्योंकि नानकजी के मुख से 'तेरा' (तेरह) शब्द निकलते ही वे सब भूल गये कि 'मैं किसी दुकान पर अनाज तौलने का काम कर रहा हूँ।' 'तेरा... तेरा....' करते-करते वे तो परमात्मा की ही याद में तल्लीन हो गये कि 'हे प्रभु ! मैं तेरा हूँ और यह सब भी तेरा ही है।'

फिर तो 'तेरा-तेरा...' की धुन में नानकजी ने कई बार अनाज तौलकर ग्राहक को दे दिया।

लोगों की नज़र में तो नानकजी यंत्रवत् अनाज तौल रहे थे, किन्तु नानकजी उस समय अपने प्रभु की याद में खो गये थे। इस बात की शिकायत भी नवाब तक पहुँची। फिर नवाब ने दुकान पर सामान एवं पैसों की जाँच करवायी तो घाटे की जगह पर कुछ पैसे ज्यादा ही मिले ! यह चमत्कार देखकर नवाब ने भी नानकजी से माफी माँगी।

जो भक्त अपनी चिंता को भूलकर भगवान के ध्यान में लग जाता है उसकी चिंता परमात्मा स्वयं करते हैं। श्रीमद भगवद् गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा हैः

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

'जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरंतर चिंतन करते हुए निष्कामभाव से भजते हैं, उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थितिवाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।'

(गीताः 9.22)

ऐसी ही चमत्कारिक घटना श्री लीलारामजी के जीवन में भी घटी। श्री लीलारामजी का जन्म जिस गाँव में हुआ था, वह महराब चांडाई नामक गाँव बहुत छोटा था। उस जमाने में दुकान में बेचने के लिए सामान टंगेबाग से लाना पड़ता था। भाई लखुमल वस्तुओं की सूची एवं पैसे देकर श्री लीलारामजी को खरीदी करने के लिए भेजते थे।

एक समय की बात हैः उस वर्ष मारवाड़ एवं थर में बड़ा अकाल पड़ा था। लखुमल ने पैसे देकर श्री लीलारामजी को दुकान के लिए खरीदी करने को भेजा। श्री लीलारामजी खरीदी करके, माल-सामान की दो बैलगाड़ियाँ भरकर अपने गाँव लौट रहे थे। गाड़ियों में आटा, दाल, चावल, गुड़, घी आदि था। रास्ते में एक जगह पर गरीब, पीड़ित, अनाथ एवं भूखे लोगों ने श्री लीलाराम

जी को घेर लिया। दुर्बल एवं भूख से व्याकुल लोग जब अनाज के लिए गिड़गिड़ाने लगे तब श्री लीलारामजी का हृदय पिघल उठा। वे सोचने लगे। 'इस माल को मैं भाई की दुकान पर ले जाऊँगा। वहाँ से खरीदकर भी मनुष्य ही खायेंगे न....! ये सब भी तो मनुष्य ही हैं। बाकी बची पैसे के लेन-देन की बात... तो प्रभु के नाम पर भले ये लोग ही खा लें।'

श्री लीलारामजी ने बैलगाड़ियाँ खड़ी करवायीं और उन क्षुधापीड़ित लोगों से कहाः

"यह रहा सब सामान। तुम लोग इसमें से भोजन बना कर खा लो।"

भूख से कुलबुलाते लोगों ने तो दोनों बैलगाड़ियों को तुरंत ही खाली कर दिया। श्री लीलारामजी भय से काँपते, थरथराते गाँव में पहुँचे। खाली बोरों को गोदाम में रख दिया। कुँजियाँ लखुमल को दे दीं। लखुमल ने पूछाः

"माल लाया?"

"हाँ।"

"कहाँ है?"

"गोदाम में।"

"अच्छा बेटा ! जा, तू थक गया होगा। सामान का हिसाब कल देख लेंगे।"

दूसरे दिन श्री लीलारामजी दुकान पर गये ही नहीं। उन्हें तो पता था कि गोदाम में क्या माल रखा है। वे घबराये, काँपने लगे। उनको काँपते हुए देखकर लखुमल ने कहाः "अरे ! तुझे बुखार आ गया? आज घर पर आराम ही कर।"

एक दिन.... दो दिन.... तीन दिन..... श्री लीलारामजी बुखार के बहाने दिन बिता रहे हैं और भगवान से प्रार्थना कर रहे हैं-

"हे भगवान ! अब तो तू ही जान। मैं कुछ नहीं जानता। हे करन-करावनहार स्वामी ! तू ही सब कराता है। तूने ही भूखे लोगों को खिलाने की प्रेरणा दी। अब सब तेरे ही हाथ में है, प्रभु ! तू मेरी लाज रखना। मैं कुछ नहीं, तू ही सब कुछ है...."

एक दिन शाम को लखुमल अचानक श्री लीलारामजी के पास आये और बोलेः

"लीला.... लीला ! तू कितना अच्छा माल लेकर आया है !"

श्री लीलारामजी घबराये। काँप उठे कि 'अच्छा माल.... अच्छा माल कहकर अभी लखुमल मेरे कान पकड़कर मारेंगे। वे हाथ जोड़कर बोलेः

"मेरे से गल्ती हो गयी।"

"नहीं बेटा ! गलती नहीं हुई। मुझे लगता था कि व्यापारी तुझे कहीं ठग न लें। ज्यादा कीमत पर घटिया माल न पकड़ा दें। किन्तु सभी चीजें बढ़िया हैं। पैसे तो नहीं खूटे न?"

"नहीं, पैसे तो पूरे हो गये और माल भी पूरा हो गया।"

"माल किस तरह पूरा हो गया?"

श्री लीलाराम जी जवाब देने में घबराने लगे तो लखुमल ने कहाः "नहीं बेटा ! सब ठीक है। चल, तुझे बताऊँ।"

ऐसा कहकर लखुमल श्री लीलारामजी का हाथ पकड़कर गोदाम में ले गये। श्री लीलारामजी ने वहाँ जाकर देखा तो सभी खाली बोरे माल-सामान से भरे हुए मिले ! उनका हृदय भावविभोर हो उठा और गदगद होते हुए उन्होंने परमात्मा को धन्यवाद दियाः

'प्रभु ! तू कितना दयालु है.... कितना कृपालु है !'

श्रीलीलाराम जी ने तुरंत ही निश्चय कियाः 'जिस परमात्मा ने मेरी लाज रखी है.... गोदाम में बाहर से ताला होने पर भी भीतर के खाली बोरों को भर देने की जिसमें शक्ति है, अब मैं उसी परमात्मा को खोजूँगा..... उसके अस्तित्व को जानूँगा.... उसी प्यारे को अब अपने हृदय में प्रगट करूँगा।'

अब श्री लीलारामजी का मन धीरे-धीरे ईश्वराभिमुख होने लगा। हर पल उनका बढ़ता जाता ईश्वरीय अनुराग, उन्हें आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर करने लगा। तन से तो वे दुकान सँभालते किंतु मन सदैव परमात्म-प्राप्ति के लिए व्याकुल रहते।

एक बार श्री लीलारामजी बैलगाड़ी के ऊपर सामान लादकर जंगी नामक गाँव में बेचने जा रहे थे तब जीवाई नामक एक महिला ने श्री लीलाराम जी के पास से थोड़ा सामान खरीदा। उसमें से तौलते वक्त एक चीज का वजन उस महिला को कम लगा। उसने तुरंत ही बालक श्री लीलारामजी को एक थप्पड़ मारते हुए कहाः

"तू सामान कम देकर हमें लूटता है? यह तुझे आधा सेर लगता है?"

तब श्री लीलारामजी ने शांतिपूर्वक कहाः

"माँ ! सामान तो बराबर तौलकर दिया है फिर भी तुम्हें शंका हो तो फिर से तौल दूँ?"

श्रीलीलारामजी ने सामान तौला तो उसका वजन आधे सेर की जगह पौना सेर निकला। जीवाई शरमा गयी एवं श्री लीलारामजी के पैरों पड़ी। सरल हृदय के श्री लीलारामजी को जरा भी क्रोध न आया। उलटे वे ही उस महिला से माफी माँगने लगे।

उसी दौरान् एक ऐसी ही दूसरी घटना घटी जिसे लेकर श्री लीलारामजी की जिज्ञासा ज्यादा तीव्र हो गयी।

उस गाँव में जीवा नामक एक शिकारी रहता था। अकाल का समय था। बाल-बच्चों वाला जीवा अपने बच्चों की भूख को न मिटा सका। अनाज की गाड़ी लेकर जब श्री लीलारामजी जा रहे थे तब रास्ते में थका हारा जीवा श्री लीलारामजी के पास आया और याचना करने लगाः "मेरे बच्चे भूख से कुलबुला रहे हैं। थोड़ा सा अनाज दे दें तो बच्चों को जीवनदान मिल सके।"

श्री लीलारामजी ने जीवा की लाचारी को समझा। भूख से अंदर धँसी हुई आँखें उसकी दयाजनक स्थिति का संकेत दे रही थीं। श्री लीलारामजी परिस्थिति पा गये।

वैष्णवजन तो तेने रे कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे.....

जीवा के परिवार की ऐसी करूण स्थिति ने उन्हें हिलाकर रख दिया। क्षण का भी विचार किये बिना आधे मन अनाज से उसका थैला भर दिया।

उस जमाने में पैसे का लेन-देन बहुत कम था। छोटे-छोटे गाँवों में सामान की अदला-बदली ही ज्यादा होती थी। जीवा शिकारी चल पड़ा लखुमल की दुकान की ओर। वहाँ थोड़ा-सा अनाज देकर मिर्च-मसाले ले लिये। जब लखुमल ने जीवा से पूछाः "तुझे अनाज कहाँ से मिला?"

तब जीवा ने बतायाः "यह अनाज लीलाराम के पास से दान में मिला है।"

ऐसा कहकर लखुमल के आगे श्री लीलारामजी की खूब प्रशंसा करते हुए आशीर्वाद बरसाने लगा।

लखुमल विचार में पड़ गये। उन्हें हुआ कि इस बार लीलाराम का हिसाब ठीक से जाँच लेना पड़ेगा। जब श्री लीलारामजी ने हिसाब दिया तो पैसे ज्यादा आये ! लखुमल ज्यादा उलझ गये। उन्होंने श्री लीलारामजी से पूछाः "पहले के किसी के पैसे लेने-देने के तो इस हिसाब में नहीं हैं न?"

जब श्री लीलारामजी ने खूब सरलता से बताया कि 'किसी का भी आगे पीछे का कोई भी हिसाब बाकी नहीं है।' तब लखुमल की उलझन और बढ़ गयी।

अब तो उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने निश्चय किया कि जैसे भी हो खुद जाँच किये बिना इस उलझन को नहीं सुलझाया जा सकता। दूसरी बार जब उन्होंने श्री लीलारामजी को सामान खरीदने के लिए भेजा तब वह स्वयं भी छिपकर श्री लीलारामजी की लीला को देखने लगे।

जब श्री लीलारामजी अच्छी तरह खरीदी करके वापस लौटने लगे तब रास्ते में गरीब-गुरबों, भूखे-प्यासों को अनाज बाँटने लगे। लखुमल ने श्री लीलारामजी की इस दयालुता एवं दानवृत्ति को देखा, गरीबों की तरफ उनका निष्काम भाव देखा। वह सब लखुमल छिपकर ही देखते रहे। जब श्री लीलारामजी घर पहुँचे तब लखुमल ने मानो, कुछ न हुआ हो इस प्रकार सारा हिसाब लिया तो आश्चर्य ! हिसाब बराबर ! सामान भी बराबर !! कहीं कोई घाटा नहीं !!!

श्री लीलारामजी अपनी उदारता एवं सरलता से खूब लोकप्रिय हो गये इसलिए दूसरे दुकानदारों को श्री लीलारामजी से ईर्ष्या होने लगी। मौका मिलते ही वे लखुमल के कान भरतेः "तुम्हारे मामा का लड़का अपनी दानवृत्ति से तुम्हें पूरा दिवालिया बना देगा। उससे सँभलना।"

तब लखुमल ने स्पष्ट करते हुए कहाः "मैं रोज सूची के अनुसार सामान एवं पैसों की जाँच कर लेता हूँ। मुझे तो कभी भी, कहीं भी गड़बड़ नहीं दिखी। उलटे मेरा व्यापार एवं नफा दोनों बढ़ने लगा है। मैं किस प्रकार उस पर शंका कर सकता हूँ?"

श्री लीलारामजी की सहृदयता एवं परोपकार की वृत्ति को देखकर लखुमल के हृदय में श्री लीलारामजी के लिए आदर एवं भक्तिभाव उदित होने लगा। खुद के द्वारा की गयी जाँच से भी लखुमल का यह विश्वास दृढ़ ह गया कि लीलाराम कोई साधारण बालक नहीं है। उसमें कई दिव्य शक्तियों का भण्डार है, बालक अलौकिक है।

श्री लीलारामजी को भी गाँव के व्यापारियों द्वारा की जाने वाली शिकायतों का अंदाज लग गया था। लखुमल कुछ न कहते और श्री लीलारामजी भी विरक्तभाव से सब घटनाओं को देखते रहते। फिर भी गहराई में एक ही चिंतन चलता रहता कि 'इस दान की कमी को पूरा करने वाला कौन?'

इस कमी को पूरा करने वाले के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता गया। जिज्ञासा की तीव्रता बढ़ने लगी। श्री लीलारामजी को दृढ़ विश्वास हो गया कि 'इस ब्रह्माण्ड में कोई सबसे बड़ा दानी है जिसकी दानवृत्ति स ही सारे ब्रह्माण्ड का व्यवहार चलता है। मुझे उसी दाता प्रभु को जानना है।' मैंनें कुछ दान किया है या अच्छा काम किया है - इस बात का उन्हें जरा भी अहं न था। दूसरों के हित को ध्यान में रखकर, निष्काम भाव से कर्म करने वाले की सेवा में तो प्रकृति भी दासी बनकर हाजिर रहती है।

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको देत है, क्या लागत है मोर।।

उपरोक्त चमत्कारिक घटनाओं ने श्री लीलारामजी को अधिक सजग कर दिया। उनके अंतरतम में वैराग्य की अग्नि अधिकाधिक प्रज्वलित होने लगी। अब वे अपना अधिकाधिक समय ईश्वर की आराधना में बिताने लगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संन्यास एवं गुरुदेव के सान्निध्य में

जब कुलगुरु श्री रतन भगत ने नश्वर देह का त्याग कर दिया तब उनकी गद्दी पर उनके शिष्य टौंरमल को बैठाया गया। थोड़े समय के पश्चात् वे भी संसार से अलविदा हो गये तब शिष्यों ने लीलारामजी को गद्दी पर बिठाया।

नन्हें-से लीलारामजी गद्दी पर तो बैठे किन्तु उनका मन वहाँ नहीं लगता था। उनके भीतर तो निरंतर यही विचारधारा चलती थी कि 'दान देने के कारण कम हुई वस्तुओं की भरपाई करने वाला वह कौन है, जो मेरी लाज रखता था?' उन्होंने निर्णय किया कि 'जिसने मेरी लाज रखी, जिसने खाली गोदाम को भरा, मैं उस परमात्मा का साक्षात्कार करके ही रहूँगा। नहीं तो मेरा जीवन व्यर्थ है।' उनकी अन्तरात्मा जागृत हो उठी। संसार के नश्वर पद एवं संबंधों को त्यागने का दृढ़ निश्चय करके वे अपनी चाची के पास आकर कहने लगेः

"माँ मैं परमात्मा की खोज करके उन्हें पाना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए।"

चाची को यह बात सुनकर बड़ा आघात लगा। घर में एक ही कुलदीपक है और वह भी साधु बनना चाहता है ! उन्होंने बात टालने का काफी प्रयास किया किंतु श्री लीलारामजी तो

दृढ़निश्चयी थे। उनके मन पर चाची के रोने-गिड़गिड़ाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आखिरकार चाची ने एक वचन लिया कि 'अंत समय में मेरी अर्थी को कंधा जरूर देना।' कंधा देने का वचन देकर श्री लीलारामजी तो अपना परम लक्ष्य पाने के लिए घर छोड़कर निकल पड़े। जिसके हृदय में तीव्र वैराग्य हिलोरें मारता हो उसे जगत में कौन सकता है?

विवेकवान् पुरुष नश्वर उपलब्धियों से मुँह मोड़कर अपना समय परमार्थ सिद्ध करने में ही लगाते हैं। कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ के पास पूरा राजपाट, युवान सुंदर पत्नी, सुंदर बालक एवं भोग-विलास के सभी साधन थे। वे जब छोटे थे तब ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि 'यह बालक संसार का त्याग करके, संन्यासी बनकर, जगत का उद्धार करेगा।'

राजा ने अपना इकलौता लाडला पुत्र साधु न बने इसका पहले से ही खूब ख्याल रखा था। परंतु एक दिन सिद्धार्थ को बाहर की दुनिया देखने की इच्छा हुई। वे सारथि द्वारा रथ तैयार करवाकर बाहर की दुनिया का अवलोकन करने निकले।

मार्ग में उन्होंने कमर से झुका हुआ एक वृद्ध, एक रोगी, एक अर्थी एवं एक संन्यासी को देखा। वृद्धावस्था, रोग एवं मृत्यु को देखकर उन युवान सिद्धार्थ के मन में प्रश्न उत्पन्न हुआ कि इन दुःखों से छूटने का कोई उपाय है क्या? तब प्रभुप्राप्ति के सिवाय उन्हें दूसरा कोई उत्तर नहीं मिला। उनका विवेक जगा कि मिले हुए शरीर के साथ का सुख-वैभव तो मृत्यु के झटके में ही चला जायेगा।

पड़ा रहेगा माल खजाना छोड़ त्रिया सुत जाना है।
कर सत्संग अभी से प्यारे नहीं तो फिर पछताना है।।

उन्होंने शरीर एवं संसार के दुःखों को देखा जिनमें से किसी प्रकार छूटना संभव नहीं है। सभी जीवों को उनसे गुजरना पड़ता है। यह सोचकर उनका वैराग्य जाग उठा एवं मध्यरात्रि में ही युवान पत्नी यशोधरा एवं पुत्र राहुल को सोते हुए छोड़कर, राजपाट वगैरह का त्याग करके वे परमात्म प्राप्ति के मार्ग पर निकल पड़े। जंगलों में जाकर घोर तपस्या करके परमात्म-शांति को पाकर महान् बन गये। आज लाखों लोग उन बुद्ध की बंदना करते हैं।

संसार के दुःखों को देखकर सिद्धार्थ का वैराग्य का जाग उठा। अपनी पत्नी के विश्वासघात ने राजा भर्तृहरि के जगा दिया।

राजा भर्तृहरि के पास विशाल साम्राज्य था। उनकी पिंगला नाम की अत्यंत रूपवती रानी थी। राजा को रानी के ऊपर अटूट विश्वास एवं प्रेम था परंतु वह रानी राजा के बदले एक अश्वपाल से प्रेम करती थी और वह अश्वपाल भी रानी के बदले राजनर्तकी को चाहता था। वह राजनर्तकी अश्वपाल की जगह राजा भर्तृहरि को स्नेह करती थी।

एक दिन एक योगी ने राजा को अमरफल दिया। राजा ने रानी के मृत्यु के वियोग के भय से उसे अमर बनाने के लिए वह फल खाने के लिए रानी को दिया। परंतु मोहवश रानी ने वह फल अश्वपाल को दे दिया। अश्वपाल ने वह राजनर्तकी को दे दिया। किन्तु राजनर्तकी ने जब

वह फल राजा को दिया, तभी यह सारा सत्य बाहर आया। रानी की बेवफाई को देखकर राजा के पैरों तले की जमीन खिसक गयी।

राजा भर्तृहरि ने बाद में अपने नीतिशतक में इस घटना के बारे में लिखा हैः

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या।
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च।।

'मैं जिसका सतत चिंतन करता हूँ वह (पिंगला) मेरे प्रति उदासीन है। वह (पिंगला) भी जिसको चाहती है वह (अश्वपाल) तो कोई दूसरी ही स्त्री (राजनर्तकी) में आसक्त है। वह (राजनर्तकी) मेरे प्रति स्नेहभाव रखती है। उस (पिंगला) को धिक्कार है ! उस अश्वपाल को धिक्कार है ! उस (राजनर्तकी) को धिक्कार है ! उस कामदेव को धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है !'

उनके अंतरचक्षु खुल गये। उन्होंने रनिवास, सिंहासन और राजपाट सब छोड़कर विवेकरूपी कटार से तृष्णा एवं राग की बेल को एक ही झटके में काट दिया।

फिर जंगलों में भटकते-भटकते भर्तृहरि ने गुरु गोरखनाथ के चरणों में निवेदन कियाः

"हे नाथ ! मैंने सोने की थाली में भोजन करके देख लिया और चाँदी के रथ में घूमकर भी देख लिया। यह सब करने में मैंने अपनी आयुष्य को बरबाद कर दिया। अब मैं यह अच्छी तरह जान चुका हूँ कि ये भोग तो बल, तेज, तंदरुस्ती और आयुष्य का नाश कर डालते हैं। मनुष्य की वास्तविक उन्नति भोग-पूर्ति में नहीं वरन् योग में है। इसलिए आप मुझ पर प्रसन्न होकर योगदीक्षा देने की कृपा करिये।"

राजा भर्तृहरि की उत्कट इच्छा एवं वैराग्य को देखकर गोरखनाथ ने उन्हें दीक्षा दी एवं तीर्थाटन की आज्ञा दी।

तीर्थाटन करते-करते, साधना करते-करते भर्तृहरि ने आत्मानुभव पा लिया। उसके बाद कलम उठाकर उन्होंने सौ-सौ श्लोक की तीन छोटी-छोटी पुस्तकें लिखीं- वैराग्यशतक, नीतिशतक एवं शृंगारशतक। ये आज विश्व-साहित्य के अनमोल रत्न हैं।

इस प्रकार जिसके पूर्वजन्मों के संस्कार अथवा पुण्य जगे हों तब कोई वचन, कथा अथवा घटना उसके हृदय को छू जाती है और उसके जीवन में विवेक-वैराग्य जाग उठता है, उसके जीवन में महान् परिवर्तन आ जाता है।

रोगी, वृद्ध एवं मृत व्यक्ति को देखकर सिद्धार्थ का वैराग्य जाग उठा, पिंगला के विश्वासघात को देखकर भर्तृहरि का विवेक जाग उठा और उन लोगों ने अपने विशाल साम्राज्य को ठोकर मार दी। इसी प्रकार खाली गोदाम को भरने वाले परम पिता परमात्मा की करूणा-कृपा

को देखकर श्री लीलारामजी ने स्नेहमयी चाची के प्रेम एवं गुरुगद्दी का भी त्याग कर दिया एवं परमात्मतत्व की खोज में निकल पड़े।

वे टंडोमुहम्मदखान में आकर अपने बहनोई के भाई आसनदास के साथ रहने लगे। वहाँ उन्होंने नारायणदास के मंदिर में हिंदी सीखना शुरु किया। हिंदी का ज्ञान प्राप्त करने के बाद श्री लीलारामजी ने वेदान्त-ग्रंथों का अभ्यास शुरु किया।

गाँव के छोर पर संत हंस निर्वाण का आश्रम था। जोधपुर के एक बड़े विद्वान और ज्ञानी महापुरुष स्वामी परमानंदजी उसमें रहते थे। श्री लीलारामजी के ऊपर उनकी मीठी कृपादृष्टि पड़ी। श्री लीलारामजी के उत्साह एवं तत्परता को देखकर वे उन्हें वेदान्त पढ़ाने में ज्यादा दिलचस्पी लेने लगे। इस प्रकार श्री लीलारामजी एक ओर सांसारिक एवं आध्यात्मिक विद्या में तीव्र प्रगति कर रहे थे तो दूसरी ओर उनकी त्याग एवं वैराग्यवृत्ति भी खूब प्रबल होती जा रही थी।

यह देखकर उनके बहनोई एवं सगे-संबंधियों को चिंता होने लगी। इधर उनकी चाची बी इन लोगों को संदेश भेजतीं कि लीलाराम की शादी करवा देना। वह साधु न बन जाये - इसका विशेष ध्यान रखना। इस कारण बहनोई एवं सगे-संबंधी उन्हें बार-बार संसार की तरफ खींचने का प्रयत्न करने लगे। एक सुंदर लड़की भी बतायी गयी परंतु जिसे ईश्वर से मिलने की लगन लगी हो वह भला, किस प्रकार संसार-बंधन में फँस सकता है?

चातक मीन पतंग जब पिया बिन नहीं रह पाये।
साध्य को पाये बिना साधक क्यों रह जाये?

छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास के विवाह के समय की बात है। उनके सगे-संबंधियों ने जबरदस्ती उन्हें विवाह-मंडप में बैठा दिया और सभी ब्राह्मणों ने मंगलाष्टक बोलना प्रारंभ किया। सभी ब्राह्मणों ने जब एक साथ 'सावधान' शब्द का उच्चारण किया तब समर्थ ने मन में कहाः

"मैं सदा सावधान रहता हूँ। फिर भी ये लोग मुझे सावधान रहने को कह रहे हैं इसलिए इसमें अवश्य कोई भेद होना चाहिए। मातुश्री की आज्ञा अंतरपट पकड़ने तक की ही थी, वह भी पूरी हो गयी है और मैं अपना वचन पाल चुका हूँ तो फिर अब मैं यहाँ क्यों बैठा हूँ? अब तो मुझे सचमुच सावधान हो जाना चाहिए।"

मन में ऐसा विचारकर समर्थ विवाह मंडप में से एकदम उठकर भाग गये।

इसी प्रकार श्री लीलारामजी ने जब देखा कि उनके संबंधी उन्हें दुनिया के नश्वर बंधन में बाँधना चाहते हैं तब उन्होंने अपने बहनोई के आगे स्पष्ट शब्दों में कह दियाः

"मैं पूरी जिंदगी ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करूँगा एवं संन्यासी बन कर ही रहूँगा।"

बाद में जब ये ही लीलारामजी पूज्य संत श्री लीलाशाहजी महाराज के रूप में विख्यात हुए तब वे ही सगे-संबंधी, मित्र वगैरह पगड़ी उतारकर, पैर पड़कर उनसे माफी माँगने लगे किः

"हमने तुम्हारा खूब अपमान किया था। हम तुम्हें गलत रास्ते पर ले जाने के लिए परेशान करते थे, हमें माफ करो। हमने बूढ़े होकर भी पूरा जीवन बरबाद कर डाला किंतु कुछ भी हाथ न लगा। हमने अपनी जिंदगी भी संसार में व्यर्थ बिता डाली। तुम्हारा मार्ग ही सच्चा था।"

अंत में श्री लीलारामजी का वैराग्य सीमा लाँघ गया। उन्होंने लोकलाज छोड़कर संसारियों का साधारण वेश उतार दिया एवं पाँच-छः आने वाला खादी का कपड़ा लेकर, उसमें से चोगा बनवाकर, उसे पहनकर संन्यास ग्रहण कर लिया। उस समय श्री लीलारामजी की उम्र मात्र 12 वर्ष की थी।

फिर श्री लीलारामजी टंडोमुहमदखान छोड़कर टंडोजानमुहमदखान में आ गये। यहीं वेदान्ती, ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मश्रोत्रिय संत श्री केशवानंद जी रहते थे। सिंध के कई जिज्ञासु ज्ञान पाने के लिए उनके पास आते थे।

श्री लीलारामजी जब छोटे थे तब टंडेबाग में स्वामी श्री केशवानंद जी के दर्शन करके खूब प्रभावित हुए थे। अतः अपनी आध्यात्मिक भूख मिटाने के लिए सदगुरुदेव स्वामी श्री केशवानंद जी के श्री चरणों में श्री लीलारामजी खूब श्रद्धापूर्वक समर्पित हो गये। श्री लीलारामजी की श्रद्धा एवं प्रेम को देखकर स्वामी श्री केशवानंद जी उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए पूछाः

"यह चोगा तुझे किसने पहनाया है? संत का वेश पहनने मात्र से कोई संत नहीं बन जाता वरन् जिसके जन्म-मरण का अंत हो जाता है उन्हें ही संत कहा जाता है।"

श्री लीलारामजी ने तुरंत नम्रतापूर्वक जवाब दियाः

"साँई ! किसी ने यह चोगा (अंगरखा) पहनाया नहीं है। मेरा दिल संसार से विरक्त हो गया है। दिल दातार को बेच दिया है। मैं ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करके स्वयं ही यह चोगा बनाकर, पहनकर आपकी शरण में आया हूँ। मैं आपका बालक हूँ। आपकी दया कृपा से मुझे ईश्वरप्राप्ति करनी है।"

तब स्वामी केशवानंद जी ने कहाः

"बेटा ! चोगा पहनने अथवा भगवा कपड़ा रंगने से कोई संत या संन्यासी नहीं बन जाता है। सत्य को, ईश्वर को प्राप्त करने के लिए तो तपस्या की जरूरत है, सेवा करने की जरूरत है। यहाँ तो अपने को, अपने अहं को मिटाने की जरूरत हैं। अपने अंतर में से विषय-वासनाओं को निकालने की जरूरत है।"

श्री लीलारामजी ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहाः **"यह सेवक आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार है। मुझे संसार के किसी भी सुख को भोगने की इच्छा नहीं है। मैं समस्त संबंधों का त्याग करके आपकी शरण में आया हूँ।"**

ऐसे जवाब से संतुष्ट होकर संत श्री केशवानंदजी ने खुशी से श्री लीलारामजी को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया।

सदगुरु की महिमा अवर्णनीय है। सदगुरु-महिमा का वर्णन करते हुए कबीरजी ने कहा हैः

सात समंदर की मसि करौं, लेखनी सब वनराई।
धरती सब कागद करौं, गुरु गुन लिखा न जाई।।

"सातों महासागरों की स्याही बना दी जाय, पृथ्वी के सभी वनों की लेखनी (कलम) बना दी जाये और संपूर्ण पृथ्वी को कागज बना दिया जाय फिर भी गुरु के गुणगान नहीं लिखे जा सकते।"

गुरु महिमा को अनेक ऋषि-मुनियों ने गाया है, गा रहे हैं और गाते ही रहेंगे, फिर भी उनकी महिमा का कोई अंत नहीं है, कोई पार नहीं है। स्वयं भगवान ने भी गुरुओं की महिमा का गान किया है। भगवान श्रीराम एवं श्रीकृष्ण भी जब मनुष्य रूप धारण करके पृथ्वी पर अवतरित हुए तब वे भी आत्मतत्त्व का ज्ञान पाने के लिये वशिष्ठ मुनि एवं सांदीपनि मुनि जैसे आत्मानुभव से तृप्त गुरुओं के द्वार पर गये थे। अष्टावक्र मुनि की सहज अवस्था के स्फुरित जीवन्मुक्ति देने वाले अमृतोपदेश से राजा जनक को घोड़े के रकाब में पैर डालते-डालते ज्ञान हो गया। अष्टावक्र मुनि पूर्णता को प्राप्त ब्रह्मवेत्ता महापुरुष थे और जनक पूर्ण तैयार पात्र।

ऐसे जीवन्मुक्त, ब्रह्मज्ञानी सदगुरुओं की महिमा जितनी गायें उतनी कम है। ऐसे पवित्र महापुरुषों की अनुकंपा एवं उनके पुण्य-प्रताप से यह धरा सदैव पावन होती रही है। श्री गुरुगीता में भगवान शिव ने सदगुरु की महिमा का वर्णन करते हुए माता पार्वती से कहा हैः

बहुजन्मकृतात् पुण्याल्लभ्यतेऽसौ महागुरूः।
लब्ध्वाऽमुं न पुनर्याति शिष्यः संसारबन्धनम्।।

'अनेक जन्मों में किये हुए पुण्यों से ऐसे महागुरु प्राप्त होते हैं। उनको प्राप्त करके शिष्य पुनः संसारबंधन में नहीं बँधता अर्थात् मुक्त हो जाता है।'

ऐसे आत्मानुभव से तृप्त महापुरुषों की गाथा दिव्य है। ऐसे महापुरुष अगर किसी सत्पात्र शिष्य को मिल जायें तो....

श्री लीलारामजी भी दृढ़ता एवं तत्परता से गुरुद्वार पर रहकर तन-मन से गुरुसेवा में संलग्न हो गये।

उपनिषदों में भी आया है कि आत्मज्ञान के मुमुक्षु संसार को छोड़कर, गुरु के चरणों का सेवन करते हुए वर्षों तक सेवा एवं साधनारूपी कठिन तपस्या करके सत्य का अनुभव प्राप्त करते हैं। श्री लीलारामजी भी निष्ठापूर्वक रात-दिन गुरुसेवा एवं साधना में अपने को रत रखने लगे। वे सुबह जल्दी उठकर आश्रम की सफाई करते, पानी भरते, भोजन बनाकर गुरुदेव को खिलाते,

गायों के लिए घास काटते, गायों की सब सेवा करते, आश्रम में जो अतिथि आते उन्हें भोजन बनाकर खिलाते, साधु-संतों की देखभाल करते, आधी रात तक गुरुदेव की चरणचंपी करते।

श्री लीलारामजी की दृढ़ता एवं तत्परता देखकर गुरु उन्हें सच्चे रंग में रंगने लगे। श्री लीलारामजी भी गुरु के साथ खूब मर्यादा रखते। खूब कम एवं मर्यादित बोलते थे। वे अपना समय सदैव जप, ध्यान, सत्संग, सत्शास्त्रों के अध्ययन, ईश्वर-चिंतन एवं आश्रम की विविध प्रकार की सेवा में गुजारते थे।

खाली दिमाग शैतान का घर होता है। खाली मन गपशप में लगता है अथवा आवारा मन इधर-उधर की बातें करता है। श्री लीलारामजी कभी ऐसा नहीं करतेथे। केवल दिखाने के लिए ही उनका साधक या शिष्य जैसा व्यवहार नहीं था वरन् वे तो सच्चे सतशिष्य थे।

उनका कद छोटा एवं देह का रंग श्याम था। दिखने में भोले-भाले लगते किन्तु व्यक्तित्व आकर्षक था। वाणी पर उनका बड़ा संयम था। वे आश्रम में सभी गुरुभाइयों के साथ विनम्र एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार रखते थे।

जिस प्रकार कुम्हार घड़ा बनाते वक्त बाहर से कठोर व्यवहार करता दिखता है किन्तु अंदर से अपने कोमल हाथ का आधार देता है वैसे ही सदगुरु बाहर से शिष्य के साथ कठोर व्यवहार करते, कठोर कसौटी करते दिखते हैं परंतु अंदर से उनका हृदय करुणा-कृपा से परिपूर्ण होत है। नरसिंह मेहता ने गुजराती में ठीक ही गाया हैः

भोंय सुवाडुं भूखे मारुं, उपरथी मारुं मार।
एटलुं करतां जो हरि भजे तो करी नाखुं निहाल।।

अर्थात्

धरा सुलाऊँ भूखा मारूँ, ऊपर से लगाऊँ मार।
इतना करते हरि भजे, तो कर डालूँ निहाल।।

इस प्रकार निहाल कर देने वाले सदगुरु की फटकार, कड़वे शब्द जिन जिज्ञासु साधकों-शिष्यों को मिल जाते हैं वे सचमुच धन्य हैं।

स्वामी श्री केशवानंद जी महाराज लीलारामजी की सेवा और भक्ति से खूब प्रसन्न रहते थे। वे श्री लीलारामजी को 'विचारसागर', 'पंचीकरण', भर्तृहरि का 'वैराग्यशतक', श्रीमदभगवदगीता, सारसूक्तावली एवं उपनिषद पढ़ाते। ऐसे उच्च कोटि के वेदान्त के ग्रंथों को कंठस्थ करके दूसरे दिन सुनाने के लिए कहते। कभी-कभी अत्यधिक सेवा के कारण श्री लीलारामजी को शास्त्र कंठस्थ करने का समय न मिलता तो गुरुदेव कान पकड़कर इतने जोर से गाल पर थप्पड़ मारते कि गाल पर दो-तीन घण्टे तक उँगलियों का निशान मौजूद रहता था।

शास्त्रों में आता है कि शास्त्रों की कितनी ही गूढ़ रहस्यभरी बातें, जिन्हें समझना मुश्किल है, जिनके अर्थ का अनर्थ होना संभव है उन्हें केवल सदगुरु ही सतशिष्यों को समझा सकते हैं और शिष्यों की शंकाओं का समाधान कर सकते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा हैः

तद्विद्ध प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

'तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों के पास जाकर उन्हें भली प्रकार दण्डवत प्रणाम करके तथा सेवा और निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा तू उस ज्ञान को जान। वे मर्म को जाननेवाले ज्ञान तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।'

(गीताः 4.34)

'यह संसार किस तरह प्रगट हुआ? जीव को बंधन किस तरह हुआ? मुक्ति कैसे पायी जाये? ईश्वर का वास्तविक स्वरूप क्या है? ईश्वर एवं जीव में क्या भेद है? ब्रह्म क्या है? माया क्या है?' वगैरह गूढ़ रहस्यों का ज्ञान सदगुरु द्वारा ही प्राप्त होता है। जैसे, निद्रा से जागते ही स्वप्न निवृत्त हो जाता है उसी प्रकार तत्त्वरूप का ज्ञान होते ही अज्ञानरूपी अंधकार में सदियों से भटकता हुआ जीव क्षणभर में शिव हो जाता है। सदगुरु के दर्शन, स्पर्श एवं उपदेश से शिष्य का कल्याण हो जाता है।

श्रीलीलारामजी भी स्वयं पुरुषार्थ करके तत्परता से साधना में तल्लीन हो जाते। दिनों दिन उनकी वृत्ति ब्रह्माकार होने लगी। द्वैतभाव धीरे-धीरे छूटने लगा। कभी-कभी उनका मन बेकाबू हो जाता तो वे उसे संयम में लाने के लिए अपना कान पकड़कर गाल के ऊपर तमाचा मार देते अथवा कभी छाती कूटते अथवा कभी अपने मन को प्रेम से समझाते। इतनी छोटी उम्र में कभी कुछ खाने की इच्छा होती तो उस वस्तु को आगे रखकर पलथी मार कर बैठ जाते और मन से कहतेः

"खा, लीला ! खा।" परन्तु उस वस्तु को उठाकर मुँह में नहीं रखते थे।

वे एकांत में बैठकर ध्यान करते। ध्यान करते-करते अगर कभी मन में बुरे विचार आते तो अपने को ही दंड देते थे। इस प्रकार किशोरावस्था से ही उन्होंने अपनी सभी इच्छा-वासनाओं एवं चंचल मन पर नियंत्रण पा लिया था।

कभी-कभी फकीरी भाव में आ जाते तो आश्रम से गुम हो जाते। दूर जंगल में एकांत जगह पर ध्यान भजन में लीन हो जाते। कभी-कभी ईश्वर के प्रेम का आस्वादन करते-करते मधुर गीत-गाते रो पड़ते थेः

मस्ती हस्ती है यारों ! और कुछ हस्ती नहीं।
बेखुदी हस्ती है यारों ! और कुछ मस्ती नहीं।।

यह हस्ती तो ऐसी है कि जिसमें खुद ही न रहे। यह मस्ती तो ऐसी है जिसमें खुद की मस्ती में ही मस्त हुआ जाता है। श्री लीलारामजी भी अपने मन की मस्ती को मारकर खुद खुदा की, रब की मस्ती में मस्त रहते थे। थोड़े दिनों के बाद जब आश्रम में वापस आते तब स्वामी श्री केशवानंद जी पूछते थेः

"कहाँ था?"

तब वे सिर नीचे करके चुपचाप गुरुचरणों में बैठ जाते थे। कुछ भी न बोलते थे। उन्हें एकान्तवास अत्यंत प्रिय था।

तुलसीदास नामक एक मंदिरवाले गृहस्थ स्वामी श्री केशवानंदजी महाराज के शिष्य थे एवं संबंधी भी थे। गृहस्थाश्रम में रहकर भी गुरुकृपा से उन्होंने अच्छी आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त की थी। उन्होंने धार्मिक, व्यवहारिक एवं देशसेवा के कार्यों में अच्छा भाग लिया था। सन् 1930 में संत श्री केशवानंद जी एवं तुलसीदास दोनों सत्याग्रह आंदोलन के कारण जेल में भी गये थे। संत श्री केशवानंद जी उनके साथ ही रहते थे। श्री लीलारामजी भी इन लोगों के साथ कुटुम्बी की तरह ही रहते थे। तुलसीदास की माता श्री लीलारामजी को अपने पुत्र के समान ही मानती थी। घर के बालक भी गले में दुपट्टा डालकर श्री लीलाराम जी से कहते थेः

"नाचो लीला ! नाचो.... कुछ गाओ।"

तब श्री लीलारामजी भी मस्ती में आ जाते एवं **'अहं ब्रह्मास्मि'** जैसे महावाक्य उनके श्रीमुख से स्फुरित होने लगते।

'मैं शाहों का शाह हूँ... मैं खुद खुदा हूँ....' कहते हुए आत्मा की मस्ती में वे स्थूल शरीर की हस्ती को भूल जाते।

जैसे-जैसे समय गुजरता गया वैसे-वैसे श्री लीलारामजी की आत्मानुभव की उत्कण्ठा तीव्र-तीव्रतर होने लगी। यह अवस्था देखकर गुरुदेव ने कहाः "लीलाराम ! संत रतन भगत के आश्रम में एकांत में रहकर साधना करो।"

गुरु-आज्ञानुसार श्री लीलारामजी संत रतन भगत के आश्रम में जाकर गहन साधना में तल्लीन हो गये। कभी चने तो कभी सींग खाकर अपनी भूख मिटा लेते कभी-कभी कितने ही दिनों तक उपवास भी कर लेते थे। इस प्रकार कठोर तितिक्षाएँ सहन करते-करते श्री लीलारामजी आत्म-साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर होने लगे।

जब तक जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का भान नहीं होता तब तक चाहे जैसी अवस्था आ जाये परंतु मानव पूर्ण निश्चिन्त नहीं होता। अपने 'स्व' का ज्ञान हो जाये, अपने 'स्व' की पहचान हो जाये इसे आत्म-साक्षात्कार कहते हैं। यह साक्षात्कार किसी दूसरे का नहीं वरन् अपना साक्षात्कार है। इसीलिए इसे आत्म-साक्षात्कार कहते हैं। जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं होता तब तक व्यक्ति भले 33 करोड़ श्री कृष्ण या क्राईस्ट के बीच रहे फिर भी उसे पूर्ण विश्रांति नहीं मिलेगी। आत्मवेत्ता महापुरुष की आज्ञा में अपने मन की वासनाओं एवं मन की चंचलताओं को पूर्ण समर्पित कर दें तभी पूर्ण गुरुकृपा मिल सकती है।

पूर्ण गुरु किरपा मिली पूर्ण गुरु का ज्ञान...

आत्म-साक्षात्कार का तात्पर्य क्या है? भगवान दत्तात्रेय कहते हैं- "नाम, रूप और रंग जहाँ नहीं पहुँचते ऐसे परब्रह्म में जिसने विश्रांति पायी है वह जीते जी ही मुक्त है।" नानकजी कहते हैं-

रूप न रेख न रंगु किछु त्रिहु गुण ते प्रभ भिंन।
तिसहि बुझाए नानका जिसु होवै सुप्रसंन।।

रूप, रंग, आकार जो कुछ भी है वह स्थूल शरीर में है, मन में है, बुद्धि में है, संस्कार में है। देवी-देवता के दर्शन भी यदि हो जायें तो वे भी मायाविशिष्ट चैतन्य में ही होंगे। उनके दर्शन से भी पूर्ण विश्रान्ति नहीं मिलेगी। यह स्थूल जगत, सूक्ष्म जगत एवं जीव-जगत तथा ईश्वर ये सब माया के ही अन्तर्गत हैं। जबकि आत्म-साक्षात्कार है माया से पार। जिसकी सत्ता से यह जीव, जगत और ईश्वर दिखता है उस सत्ता का 'मैं' रूप से अनुभव करना इसी का नाम है आत्म-साक्षात्कार। जीव, जगत एवं ईश्वर का अस्तित्व जिसके आधार से दिखता है, परिवर्तनशील अस्तित्व का आधार जो अबदल आत्मा है, उसे ज्यों का त्यों जानना इसी को कहते हैं आत्म-साक्षात्कार।

आत्म-साक्षात्कार के इन पथिक की यात्रा का अंत हुआ। श्री लीलारामजी का तप और वैराग्य परिपक्व हुआ। उनकी गुरुभक्ति फली और उसके परिपाकस्वरूप बीस वर्ष की उम्र में ही उन्होंने अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर लिया। जिसके लिए घर-बार छोड़ा था, सगे-संबंधी छोड़े थे, धन-ऐश्वर्य छोड़ा था, फकीरी अपनायी थी, जप-तप आसन-प्राणायाम, ध्यान-समाधि का अभ्यास किया था उस लक्ष्य को गुरुकृपा से हासिल कर लिया। सदगुरुदेव ने घर में ही घर बता दिया..... साधक में से सिद्ध अवस्था को पा लिया.... अपने अंदर ही परमानंद स्वरूप परमात्मा का अनुभव हो गया। स्वामी रामतीर्थ ने ऐसी उन्मत अवस्था का वर्णन करते हुए कहा हैः

लख चौरासी के चक्कर से थका, खोली कमर।
अब रहा आराम पाना, काम क्या बाकी रहा?
जानना था वो ही जाना, काम क्या बाकी रहा?
लग गया पूरा निशाना, काम क्या बाकी रहा?
देह के प्रारब्ध से मिलता है सबको सब कुछ।
नाहक जग को रिझाना, काम क्या बाकी रहा?

समय बीतने पर साधक श्रीलीलारामजी अब संत श्री लीलारामजी के नाम से प्रसिद्ध होने लगे। संत श्रीलीलारामजी थोड़े वर्षों तक नैनिताल के जंगलों में, एकांत में अपनी ब्रह्मनिष्ठा में ही लीन रहे। साथ ही साथ सत्संग, सेवा और साधना में भी नित्य लगे रहते। सत्संग किये बिना दिवस या रात्रि में वे कभी भी भोजन नहीं करते थे।

थोड़े समय के बाद उनके पूज्यपाद गुरुदेव ने नश्वर देह को छोड़ा। उनकी समाधी टंडोजानमुहमद के आश्रम में ही बनायी गयी। वहाँ हर वर्ष उनकी जयंती मनाने के लिए दूर-दूर से शिष्य, भक्त एवं संत कैंवरराम जैसे महापुरुष भी आते थे। इस उत्सव की पूरी व्यवस्था करने

के लिए संत श्री लीलारामजी स्वयं आते और हर प्रकार की सेवा करते। किन्तु किसी भी दिन आश्रम में नहीं रहते थे। उत्सव पूरा होते ही तलहार चले जाते थे।

एक बार संत श्री लीलारामजी जब गुरुदेव के आश्रम में आये तब उन्होंने देखा कि आश्रम में साधकों की साधना करने के लिए जो कमरे बनवाये गये हैं, उन्हें गृहस्थी लोगों को रहने के लिए किराये पर दे दिया गया है। यह देखकर संत श्री लीलारामजी अत्यंत दुःखी हुए। गृहस्थ साधक तुलसीदास ने पैसे के लोभ में यह कार्य किया था। उन्होंने तुलसीदास को फटकारते हुए कहाः

"मोह-माया के आवरण में आकर तुमने गुरुदेव के पवित्र आश्रम को गृहस्थियों के रहने की जगह बना दिया है। यह जरा भी योग्य नहीं है। शिष्य के रूप में तुमने यह अच्छा काम नहीं किया है।"

आश्रम के दूसरे गुरुभाई संत श्री लीलारामजी से खूब डरते थे क्योंकि अपनी वाक्सिद्धी के कारण श्री लीलारामजी जो कुछ भी बोलते थे वह होकर ही रहता था। इसलिए तुलसीदास तो घबराकर कुछ न बोले परंतु जब उनकी धर्मपत्नी को इस बात का पता चला तब वह बहुत क्रोधित हो गयी। हमेशा क तरह जब संत श्री लीलारामजी उन लोगों के घर भोजन करने गये तो उसने गुस्से से भरकर कहाः

"चूल्हे में से खा।"

सामान्य रूप से ऐसा कहा जाता है कि जब कोई संत, महात्मा किसी गृहस्थी के घर जाते हैं उस वक्त यदि वे किसी भी प्रकार का प्रसाद लिए बिना ही, खाली हाथ लौट जाते हैं तो उस गृहस्थ के घर पर संकट आने का भय रहता है। सरव एवं करूणामय हृदय के संत श्री लीलारामजी ने भी तुलसीदास की धर्मपत्नी के कटुवचनों की तरफ ध्यान नहीं दिया और उन्हें गृहस्थ धर्म के ऋण से मुक्त किया। संत श्री लीलारामजी ने एक शब्द बोले बिना, क्रोध किये बिना, सीधे चूल्हे के पास जाकर, राख लेकर थोड़ी जीभ पर रखी, थोड़ी मस्तक पर रखी एवं सबको प्रणाम करके तुरंत ही वहाँ से निकल पड़े। किसी को पता तक न चला कि वे कहाँ गये।

एक बार संत श्री लीलारामजी किसी गाँव में जा रहे थे तब एक गरीब स्त्री अपने मृतक पुत्र को रास्ते में रखकर दूर बैठकर रो रही थी। इस बालक को अचानक रास्ते में सोया हुआ देखकर संत श्री लीलारामजी के श्रीमुख से एकाएक निकल पड़ाः

"बेटा ! बेटा ! उठ.... उठ"

संत श्री लीलारामजी के वचन सुनकर वह मृतक बालक तुरंत उठ खड़ा हुआ और जाकर संत श्री लीलारामजी के चरणों में जा गिरा। वह स्त्री तो यह दैवी चमत्कार देखकर दौड़ती-दौड़ती आयी और संत श्री लीलारामजी के पैरों पड़कर खूब-खूब आभार मानने लगी। यह देखकर संत श्री

लीलारामजी उस स्त्री से प्रार्थना करने लगेः "माँ ! मैं तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि यह बात तू किसी से न कहना।"

परन्तु सत्य कहाँ तक छुप सकता है?

तप करे पाताल में, प्रगट होये आकाश।
रज्जब तीनों लोक में, छिपे न हरि का दास।।

थोड़े ही समय में गाँव के लोगों को इस चमत्कार का पता चल गया। 'लोगों को इस बात का पता चल गया है' - यह जानते ही संत श्री लीलारामजी तुरंत उस गाँव को छोड़कर चल पड़े।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संत-समागम

आत्म-साक्षात्कार के बाद पूज्य लीलारामजी महाराज केवल एक ही स्थान पर न रहे, वरन् जंगलों, पर्वतों एवं तीर्थस्थानों में भ्रमण करते रहे। उत्तर भारत के पहाड़ों पर उन्होंने अनेकों उच्च कोटि के संतों, महात्माओं, सिद्ध पुरुषों एवं तपस्वियों का संग किया। पाँचवे सिक्ख गुरु अर्जुनदेव ने संत-महात्माओं के संग एवं महिमा का सुंदर वर्णन करते हुए कहा हैः

साध कै संगि मुख ऊजल होत।
साध संगि मलु सगली खोत।।
साध के संगि मिटै अभिमानु।
साध कै संगि प्रगटै सुगिआनु।।
साध की महिमा बरनै कउनु प्रानी।
नानक ! साध की सोभा प्रभ माहि समानि।।

'सत्पुरुषों के संग से मुख तेजस्वी होता है, सब (दुर्गुणरूपी) मल धुल जाते हैं। सत्पुरुष के संग से अभिमान दूर हो जाता है एवं सच्चा ज्ञान प्रगट होता है। सत्पुरुषों की महिमा को कौन बखान सकता है? नानकजी कहते हैं कि सत्पुरुषों की स्तुति प्रभु की स्तुति के समान है।'

पूज्य श्री लीलारामजी बापू के जीवन में संत-समागम की महत्ता का बड़ा ऊँचा स्थान है। जहाँ कोई संत, महात्मा दिखे कि वे उनका संग अवश्य करते। उन्होंने बाल्यकाल से किसी लौकिक विद्या का अध्ययन नहीं किया था, किन्तु साधु-संतों के संग से अपने जीवन में ज्ञान की ऐसी ज्योति जगाई थी जिससे वे जगत के उद्धारक पूजनीय महापुरुष बन गये। वे स्वयं कहते थेः

"साधु का संग मनुष्य को जस्ते में से सोना बनाता है। साधु कोई आकाश में से नहीं उतरते परंतु संतों के संग एवं उनके द्वारा लिखे गये सत्शास्त्रों के अभ्यास से मनुष्य साधु बनता है।"

वे स्वयं भी संतों के संग में रंगकर लाल (रत्न) बन गये थे। कितने ही वर्षों तक उन्होंने हरिद्वार, हृषिकेश, उत्तरकाशी, हिमालय की गुफाओं, कश्मीर, तिब्बत वगैरह स्थलों पर भ्रमण करके संत-समागम से वेदान्त एवं यौगिक क्रियाओं का खूब गहराई से अभ्यास किया था। वे संपूर्ण सिद्धियों को प्राप्त करके योगीराज बने। योगदर्शन में जिन आठ सिद्धियों का वर्णन आता है उनमें से एक भी सिद्धि ऐसी न थी, जो उन्होंने सिद्ध न की हो। इसलिए उनके भक्त उन्हें **"कामिल गुरू"** अथवा **'चमत्कारों के मालिक'** कहा करते थे। गुरु नानक, संत ज्ञानेश्वर, कबीरजी, तुकारामजी, एकनाथजी महाराज जैसे असंख्य महान् संतों के जीवन भी ऐसे चमत्कारों से पूर्ण थे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संत श्री लीलारामजी में से पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाह जी महाराज

सच्चे संत अर्थात् परमात्मा के प्रचंड सामर्थ्य का भण्डार। उनका संकल्पबल क्या नहीं कर सकता है? इस संदर्भ के अनगिनत उदाहरण हमें वेद-शास्त्र एवं पुराणों में देखने को मिलते हैं। सच्चा हीरा कब तक छुपा रह सकता है ? संत श्री लीलारामजी के दैवी चमत्कारों के प्रभावित होकर लोग उन्हें संत श्री लीलारामजी नहीं, वरन् पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के नाम से जानने लगे। यह नाम किस तरह पड़ा इस संदर्भ में अलग-अलग प्रसंगों का उल्लेख मिलता हैः

जब संत श्री लीलारामजी जंगलों में जाकर रहते थे तब एक मुसलमान माली उन्हें रोज देखता था। उनके असाधारण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर माली के मन में होता कि 'इन साधु को कुछ खिलाऊँ।' परन्तु उसे मन ही मन शंका होती कि 'क्या पता, ये हिन्दू साधु मुसलमान के हाथ का कुछ खायेंगे कि नहीं?' इस प्रकार कितने ही दिन बीत गये।

एक दिन वह मूली धो रहा था। इतने में तो वे साधु (श्री लीलारामजी) उसके आगे आकर खड़े हो गये एवं बोलेः

"जो खिलाना हो, खिला। रोज-रोज सोचता रहता है तो आज अपनी इच्छा पूरी कर।"

वह मुसलमान माली तो आश्चर्यचकित हो उठा कि 'इन साधु को मेरे मन की बात का पता कैसे चला?' वह तो एकदम संत श्री लीलारामजी के चरणों में मस्तक नवाकर कहने लगाः

"सचमुच, आप नूर इलाही। आप शाह हो, मुझे दुआ करो।"

ऐसा कहकर उसने दो मूली साफ करके, धोकर संत श्री लीलारामजी को दी। उन्होंने बड़े प्रेम से उन मूलियों को खाया। इस प्रकार उस मुसलमान माली ने संत श्री लीलारामजी को **'लीलाशाहजी'** के नाम से संबोधित किया।

पूज्य स्वामी श्री लीलाशाह जी महाराज के कथनानुसार सदगुरु स्वामी श्री केशवानंद जी महाराज ने कहा थाः

"अब तू आध्यात्मिक मार्ग पर खूब आगे बढ़ चुका है, अतः तेरा नाम लीलाराम नहीं, लीलाशाह रखते हैं।"

फिर वे उन्हें लीलाशाह के नाम से ही बुलाते थे।

श्रीलीलारामजी जब बचपन में हंस निर्वाण आश्रम में स्वामी परमानंद के पास वेदान्त के ग्रंथों का अध्ययन करते थे तब उन्होंने श्री लीलारामजी से कहा थाः

"तू शाह है और शाह बनेगा।"

दूसरी एक अलौकिक घटना के कारण भी उनका नाम **'लीलाशाहजी'** पड़ा थाः

जब भारत-पाकिस्तान का विभाजन नहीं हुआ था, उन दिनों में किसी जमीन की बाबत में हिन्दू एवं मुसलमानों के आगवानों के बीच में तीस वर्ष से झगड़ा चल रहा था। हिन्दू कहते हैं कि 'यहाँ हमारा झूलेलाल का मंदिर था' और मुसलमान कहते कि 'यहाँ हमारी मस्जिद थी।'

उस समय अंग्रेजों का राज था। अंग्रेज चाहते थे कि हिन्दू एवं मुसलमान भीतर-ही-भीतर लड़ते रहें। दोनों पक्ष कोर्ट में धक्के खा-खाकर थक गये। आखिरकार दोनों पक्षों ने विचार किया कि 'यह धार्मिक जगह है। हिन्दू एवं मुसलमान दोनों धर्मों के अग्रणी इकट्ठे हों। जिनके संत का प्रभाव ज्यादा हो उन्हीं की यह धार्मिक जमीन मानी जायेगी।'

उस जमीन पर एक नीम का वृक्ष था जिससे उस जमीन की सीमा निर्धारित होती थी। दोनों पक्षों ने अंत में ठहराव पास किया कि 'जिस पक्ष का कोई पीर-फकीर उस स्थान पर अपना कोई विशेष बल, तेज या कोई चमत्कार दिखा देगा उस पक्ष की ही वह जमीन होगी।'

तब हिन्दू लोग पहुँचे पूज्य श्री लीलारामजी के पास एवं बोलेः "हमारे तो आप ही एकमात्र संत हैं। हमारे से जो कुछ हो सकता था, वह सब हमने किया किन्तु निष्फल रहे। अब पूरे हिन्दू समाज की इज्जत आपके हाथों में है। अब तो संत कहो या भगवान, आप ही हमारे एकमात्र आधार हो।"

संतों के पास अहंकार लेकर जाने वाले खाली हाथ ही लौटते हैं किन्तु विनम्र एवं श्रद्धालु लोग शरणागति के भाव से जाते हैं तो संत की करुणा कुछ देने के लिए जल्दी बरस पड़ती है।

आये हुए लोगों की प्रार्थना सुनकर पूज्यपाद स्वामी श्री लीलारामजी महाराज उस स्थल पर जाकर, जमीन पर दो घुटनों के बीच सिर पर रखकर बैठ गये। विपक्ष के लोगों ने उन्हें इस

प्रकार सहज एवं सरल रूप से बैठे देखा तो उन्हें हुआ कि 'यह साधु क्या करेगा? जीत तो हमारी ही होगी।'

पहले मुसलमान लोगों द्वारा आमंत्रित पीर-फकीरों ने मंत्र-तंत्र, जादू, टोने-टोटके वगैरह किये किन्तु कुछ न हुआ। फिर पूज्य श्री लीलारामजी की बारी आयी।

पूज्य श्री लीलारामजी बाहर से भले साधारण दिखते थे किन्तु उनके अंदर तो आत्मानंद हिलोरे ले रहा था.... बाहर से कंगाल दिखते हुए भी भीतर से आत्ममस्ती में बैठे हुए संत जो बोले उसे होने से कौन टाल सकता है? उनके द्वारा कहे गये शब्दों को झेलने के लिए तो समग्र प्रकृति भी दासी बनकर निरंतर तैयार खड़ी रहती है। भगवान श्रीराम के गुरु वशिष्ठजी महाराज कहते हैं-

'हे रामजी ! त्रिलोकी में ऐसा कौन है जो संत की आज्ञा का उल्लंघन करके सुखी रह सके?"

'श्रीरामचरितमानस' भगवान शंकर माँ पार्वती से कहते हैं-

संत अवज्ञा सुनहुं भवानि जरहि भवन अनाथ की नाईं।

जब लोगों ने पूज्य श्री लीलारामजी से आग्रह किया तब उन्होंने अपने मस्तक को धीरे-से उठाया। सामने ही नीम का वृक्ष खड़ा था। उसके ऊपर दृष्टि डालकर, गर्जना करते हुए उन्होंने आदेश दियाः

"ऐ नीम ! यहाँ क्या खड़ा है? जा, वहाँ जाकर खड़ा रह।"

बस, ऐसा कहते ही नीम का बड़ा सा झाड़ सर्र... सर्र.... करता हुआ खिसकने लगा एवं दूर जाकर खड़ा हो गया। यह देखकर लोग तो अवाक् रह गये। आज तक ऐसा चमत्कार किसी ने नहीं देखा था। अब तो विपक्ष के लोग भी पूज्य श्री लीलारामजी के पैरों पड़ने लगे। वे समझ गये कि पूज्य श्री लीलारामजी कोई सिद्ध पुरुष हैं। उन्होंने हिन्दुओं से कहाः

"ये केवल आपके ही पीर नहीं हैं, परंतु आपके, हमारे और सभी के पीर हैं। आज से वे 'लीलाराम' नहीं परंतु 'लीलाशाह' हैं।"

तब से लोग उन्हें पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के नाम से जानने लगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सेवा-यज्ञ

किसी भी देश की सच्ची संपत्ति संतजन ही होते हैं। वे जिस समय प्रगट होते हैं उस समय के जन-समुदाय के लिए उनका जीवन ही सच्चा मार्गदर्शक होता है। जिस समय जिस धर्म की आवश्यकता होती है उसका आदर्श प्रस्तुत करने के लिए स्वयं भगवान ही तत्कालीन संतों के

रूप में नित्य अवतार लेकर आविर्भूत होते हैं- ऐसा कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। वे भय एवं शोक, ईर्ष्या एवं उद्वेग की आग से तपे हुए समाज को सुख और शांति, स्नेह एवं सहानुभूति, सदाचार एवं संयम, साहस एवं उत्साह, शौर्य एवं क्षमा जैसे दिव्य गुण देकर, हृदय के अज्ञान-अंधकार को मिटाकर जीव को शिवस्वरूप बना देते हैं। उत्तर भारत में तपस्यामय जीवन बिताकर पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू नयी शक्ति, नयी ज्योति एवं अंतर की दिव्य प्रेरणा प्राप्त कर, लोगों को सच्चा मार्ग बताने, गरीब एवं दुःखी लोगों को ऊँचा उठाने तथा सतशिष्यों एवं जिज्ञासुओं को ज्ञानामृत पिलाने के लिए कई वर्षों के बाद सिंध देश में आये।

सुखमनी के इस वेद-वचन में उन्हें पूर्ण श्रद्धा थीः

ब्रहम महि जनु जन महि पार ब्रहमु।
एकहि आपि नही कछु भरमु।।

'जिन्होंने परब्रह्म का अनुभव कर लिया है ऐसे संत परब्रह्म में और परब्रह्म ऐसे संत में समा जाते हैं। दोनों एकरूप हो जाते हैं। दोनों में कोई भेद नहीं रहता।'

वे स्वयं भी कहते कि, जहाँ द्वैत नहीं है वहाँ दूसरों की भलाई करना यह स्वयं की ही भलाई करने जैसा है। वे वेद एवं उपनिषदों के वचनों के अनुसार पूरे विश्व को ही अपना मानते हैं।

अष्टादशपुराणेषु व्यासास्यं वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

'अठारह पुराणों में वेदव्यासजी के दो ही वचन हैं कि परोपकार ही पुण्य हैं एवं दूसरों को पीड़ा देना पाप।'

पूज्य संत श्री लीलाशाहजी बापू ने व्यासजी के इन वचनों को अपना लिया कि परोपकार ही परम धर्म है। इसके लिए उन्होंने अपना सारा जीवन दाँव पर लगा दिया। धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक हर क्षेत्र में उन्होंने कार्य शुरू किया। वे मानो स्वयं एक चलती-फिरती संस्था थे, जिनके द्वारा अनेक कार्य होते थे।

सर्व प्रथम तलहार में जाकर उन्होंने संत रतन भगत के आश्रम में एक कुआँ खुदवाया। वहाँ दूसरे साधकों के साथ वे स्वयं भी एक मजदूर की भाँति कार्य करते थे। धन्य ! संत की लीला कितनी अनुपम होती है !

वहीं उन्होंने एक गुफा बनवायी थी। लंबे समय तक वे उसी गुफा में रहते। प्रातःकाल गुफा में से निकलकर शुद्ध हवा लेने जंगल की ओर घूमने जाते। रोज श्रद्धालु, प्रेमी भक्तों को सत्संग देते। दिन में एक ही बार भोजन लेते। मौज आ जाती तो अलग-अलग गाँवों एवं शहरों में जाकर भी लोकसेवा करते एवं सुबह-शाम सत्संग देते। गर्मी के दिनों में आबू, हरिद्वार, हृषिकेश अथवा उत्तरकाशी में जाकर रहते।

जिन्होंने अपने सगे बेटे की तरह उनका लालन-पालन किया था उन चाची को उन्होंने वचन दिया था कि उनकी अंतिम क्रिया वे स्वयं आकर करेंगे। अतः कभी-कभार वे अपनी चाची के पास भी हो आते थे।

तलहार में एक बार अपनी चाची की गंभीर बीमारी के समाचार सुनकर वे घर पधारे किंतु घर जाते ही पता चला कि वे समाचार झूठे थे। उन्होंने चाची को समझायाः

"आपके पास जो सोना पड़ा है, वह साँप है। मरते समय उसमें मोह रह जायेगा तो जीव की अवगति होगी। अतः सभी आभूषणों को बेच डालो और जो पैसे आयें उसे दान कर दो।"

चाची ने सभी आभूषण पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू को दे दिये। पूज्य बापू ने उन्हें बेच दिया। थोड़े पैसे चाची के खर्च के लिए रखकर बाकी के सब पैसे गरीब-गुरबों में दान कर दिये।

चाची माँ को खर्च के पैसे देकर जाने लगे और बोलेः

"मैं अंत समय पर जरूर वापस आऊँगा।"

उसके एक वर्ष के बाद चाची की उम्र 100 वर्ष की होते ही वे खूब बीमार पड़ गयीं। केवल एक ही इच्छा थी कि अंत समय 'बेटे' के दर्शन हो। उस वक्त पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज हरिद्वार में थे। इस ओर चाची के शरीर में खिंचाव होने लगा... पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज भी ठीक समय पर आ पहुँचे।

दूसरे दिन चाचीमाँ ने प्राण त्याग दिये। पूज्य श्री लीलाशाह जी बापू ने 12 दिन रहकर उनकी सभी अंतिम क्रियाओं को स्वयं करके अपना वचन निभाया।

पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू अब कौटुम्बिक जवाबदारियों से मुक्त हो गये। अब उनका पूरा समय जनसेवा के कार्यों में बीतने लगा। उन महान् ज्ञानी के जीवन में कर्मयोग के साथ देशभक्ति भी झलक उठती थी। उनका रहन-सहन एकदम सादा था। किसी भी जगह पर जाते तो शहर के बाहर एकांत स्थल ही रहने के लिए पसंद करते। प्यारा-प्यारा 'भाई' शब्द तो उनके द्वारा सदैव बोला जाता। उनका दिल भी अत्यंत कोमल एवं धीरजवाला था। वाणी पर खूब संयम था। सँभल-सँभलकर धीरे-धीरे बोलते थे। वे सादगी, सदाचार, संयम एवं सत्य के सच्चे प्रेमी थे।

सिंध के दक्षिणी भाग लाड़ में उन्होंने देखा कि वहाँ के लोग व्यावहारिक तौर पर काफी पीछे हैं। वहाँ उन्होंने छोटे-बड़े सभी को स्वास्थ्य सुधारने के लिए योगासन एवं व्यायाम करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके अलावा सत्संग देकर लोगों को परमात्म-मार्ग पर ढालने के लिए भी प्रोत्साहित किया।

सुबह कई नौजवान उनके पास आते, तब वे उन्हें योगासन सिखाकर उसके फायदे बताते, साथ-ही-साथ ब्रह्मचर्यपालन एवं वीर्यरक्षा की महिमा भी खूब अच्छे ढंग से बताते। योगासन एवं कसरत कराने के बाद नवयुवकों को दूध पिलाकर जंगल की ओर खुली हवा में घूमने के लिए ले जाते।

उन्होंने विद्यार्थियों, नवयुवकों एवं बड़ों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार पर खूब जोर दिया। बहनों एवं माताओं को भी हिन्दी सीखने के लिए उत्साहित किया। उनकी प्रेरणा से सिंध में टंडोमुहमदखान, संजोरी, मातली, तलहार, बदीन, शाहपुर वगैरह गाँवों में कन्या विद्यालय खुल गये, जिनमें मुख्य भाषा हिन्दी थी।

पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू जहाँ-जहाँ जाते वहाँ-वहाँ खादी एवं स्वदेशी चीजों का उपयोग करने का आग्रह करते। **महात्मा गाँधी ने तो अभी खादी पहनने का आंदोलन शुरू भी नहीं किया था, उसके पहले ही पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने स्वयं जुलाहे के हाथ से बनाये गये खादी के कपड़ों को पहनना शुरू कर दिया था।** लोगों को फैशन से दूर रहने की एवं सादा जीवन जीने की सलाह दी। लाड़ में शराब एवं कबाब खाने का जो रिवाज पड़ गया था, उसे बंद करने के लिए उन्होंने खूब मेहनत की। इसके अलावा बालविवाह की प्रथा भी बंद करवायी।

लाड़ में हरिजनों की स्थिति खूब दयाजनक थी। उसे सुधारने एवं विकसित करने के लिए यहाँ स्वामी हंस निर्वाण संस्था प्रयास कर रही थी। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने उस कार्य को साकार कर दिखाया था। वे खुद हरिजन लोगों की बस्ती में जाकर उन्हें स्वास्थ्य का महत्त्व बताते। सफाई से रहना सिखाते, बच्चों को स्कूल में पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते। लोगों को समझाते कि 'तुम हिन्दू हो। अंडे, मांस एवं शराब का उपयोग बन्द कर दो।'

उन्होंने हरिजन बच्चों को पढ़ाने के लिए एक बहन को भी रखा था जो उन लोगों की बस्ती में जाकर बच्चों की पढ़ाती थीं। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज खुद ही बच्चों को किताबें, कापियाँ वगैरह देते। अपनी कुटिया के कुएँ में से हरिजनों को पानी भरने देते। दूसरों को भी सलाह देते कि ऊँच-नीच के भेद को छोड़कर हरिजनों को किसी भी कुएँ से पानी भरने दो।

हरिजनों के घर में भी सूत काँतना सिखाकर उन्हें स्वावलंबी बनने के लिए प्रेरित करते। उनके मार्गदर्शन से हरिजन पवित्रता एवं स्वच्छता से रहने लगे। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज छूत-अछूत के भेद को दूर करने के लिए कभी-कभी पवित्रता बनाये गये हरिजनों के भोजन को भी ग्रहण करते।

पूरे सिंध देश में जहाँ-जहाँ भक्तजन पुकारते वहाँ-वहाँ प्रेम के प्रत्युत्तर के रूप में स्वयं जाकर सत्संग द्वारा जनता में संगठन एवं देशप्रेम की भावना जागृत करते। स्त्रियों, हरिजनों एवं समाज के उत्थान के लिए, बालविवाह प्रथा को बंद करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करते। यौगिक क्रियाओं एवं कसरतों द्वारा तन को तंदुरुस्त एवं मन को प्रसन्न रखकर सुखी जीवन जीने की कुंजी बताते।

देश में जब भी कोई दैवी प्रकोप जैसे कि अकाल, भूकंप, संक्रामक रोग, अतिवृष्टि या अनावृष्टि होती तब अनाथ, पीड़ित लोगों को मदद करने के लिए उनका हृदय एकदम तत्पर हो जाता। एक बार बिहार में अकाल पड़ा तब पूज्य श्री ने श्रद्धालु भक्तों के पास से पैसे इकट्ठे करके

अनाज एवं जीवनोपयोगी वस्तुओं को हैदराबाद से भेजने की व्यवस्था की। उस वक्त मुसलमानों के रोजे के दिन चल रहे थे। मुसलमानों ने कहाः

"आज 29वाँ रोजा है। रात्रि को चंद्रदर्शन करके, रोजा (उपवास) छोड़कर, कल ईद मनाकर फिर नावें ले जायेंगे।"

उस वक्त पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने 17-18 दिनों से शपथ ले रखी थी कि 'जब तक अकाल-पीड़ितों के लिए नौकाएँ रवाना नहीं हो जायेंगी तब तक मैं उपवास नहीं तोड़ूँगा।' इधर नाविक लोग नावों को न ले जाने के लिए हठ ले बैठे थे। तब पूज्य श्री के श्रीमुख से निकल पड़ाः

"आज तुम्हें चंद्र नहीं दिखेगा एवं कल तुम ईद भी नहीं मनाओगे।"

हुआ भी ऐसा ही। चंद्र दिखा ही नहीं। अंत में परेशान होकर नाविक लोग नावें लेकर हैदराबाद पहुँचे। सामान पहुँचने की पक्की खबरें प्राप्त करने के बाद ही पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने अपना उपवास छोड़ा।

इसी प्रकार जब बंगाल में सन् 1949 में भीषण अकाल पड़ा तब फिर से पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने दस हजार मन अनाज एकत्रित करवाया। टंडोमहमदखान, तलहार एवं बदीन में स्वयं खड़े रहकर सारा अनाज नौकाओं पर चढ़वाया। जब तक कराची से बंगाल जाने के लिए अनाज रवाना नहीं हुआ तब तक उपवास जारी रखा।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज जब हरिद्वार में रहते थे तब बारिश के दिनों में अत्यधिक बरसात होने की वजह से गंगा के जोरदार बहाव को पार करके आने-जाने में गाँव के लोगों को काफी परेशानी उठानी पड़ती। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के करूणामय हृदय से यह कष्ट नहीं देखा गया।

वे पुनः सिंध गये। वहाँ से आवश्यक धनराशि एवं एक रिटायर्ड इन्जीनियर को साथ लेकर हरिद्वार आये। हरिद्वार तथा उत्तरकाशी में तीन पुल बनवाये। तब वहाँ के लोगों ने खुश होकर पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज का बहुत आभार माना।

यह काम वास्तव में तो गढ़वाल के राजा को करना चाहिए था किन्तु राजा ने उस तरफ ध्यान तक नहीं दिया था। जब उसे पता चला कि यह काम किसी महात्मा द्वारा हो रहा है तब पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के दर्शन के लिए आकर वह प्रार्थना करने लगा किः

"अब आपके खान-पान की पूरी व्यवस्था राजदरबार की ओर से की जायेगी।" किन्तु पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया। तब राजा ने कहाः

"आप सचमुच में गुरू नानक की तरह शाहों के शाह हैं।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

देशभक्ति

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज की रग-रग में देशभक्ति समाई हुई थी। देशवासियों की कल्याण-भावना से प्रेरित होकर वे कई बार सिंधी भाषा में प्रभु से प्रार्थना करते हुए निम्नांकित पंक्तियों का गुंजन करतेः

भारत जो भलो करि शाद त आबाद रखु।
अनाथनि नाथ तूं बाझ करि हाणि तूं।।
सभ जो सतार साईं प्रभु वाली सारे जग जो।
राम राचि डसि साईं दुख लाहे पाण तूं।।
वस में न आउँ डिसां तोखां वडो साईं सजो।
सुख जो भन्डारू दाता भरपुर माण तूं।।
दातारु सघ शक्तिअ वारो सुन्दर अपारु आहीं।
लीले खे लालण लाल रखु जीअ साणु तूं।।

'हे प्रभु ! भारतीयों (भारत-देशवासियों) का कल्याण कर। उन्हें तू आबाद (सुखी) रख। प्रभु ! तू अनाथों का नाथ है। हमारे पर दया कर। हमारी लाज रखना। लीलाशाह की एक प्रार्थना है कि मेरे पालन-पोषण करने वाले ! तू सदा मुझे अपने साथ रखना, सदा अपने सदा रखना।'

उच्च कोटि के देशभक्त होने के नाते वे बालकों तथा नवयुवनों में सदैव देशभक्ति का भाव भरते। सन् 1945 में जब सिंध असेम्बली के चुनाव हुए तब उन्होंने काँग्रेस के उम्मीदवारों के चुनाव में काफी मदद की। उस समय टंढई विभाग में रायसाहब रीझुमल हिन्दू महासभा के उम्मीदवार के रूप में खड़े थे। दूसरी ओर काँग्रेस उम्मीदवार के रूप में शेठ टहुलमल थे। हिन्दू महासभा के उम्मीदवार को हराने में डॉ. चोईथराम और दूसरे कितने ही लोग असफल हुए। पंडित जवाहरलाल नेहरू भी दूसरी तरफ के सभी विरोधी पक्षों को हराने में अच्छी तरह सफल हुए थे, किन्तु रायसाहब रीझुमल के सामने वे भी हार गये थे।

रायसाहब के जीतने की पूरी संभावना थी फिर भी उन्होंने पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के आदेश का सम्मान करते हुए सेठ टहलराम के पक्ष में हाथ ऊँचे कर दिये जिससे सेठ टहलराम बिना विरोध के विजनी हो गये। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने रायसाहब को खूब आशीर्वाद दिया। इस ओर सेठ टहलराम को पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के लिए अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। वे अंतिम क्षण तक पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के शिष्य बन कर रहे।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज की देशभक्ति तीन बार ज्यादा प्रकाश में आयी थीः

पहली बार तब, जब भारत की स्वतंत्रता के पूर्व इण्डियन नेशनल काँग्रेस के सुदृढ़ बनाने में पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने सदैव योगदान दिया। दूसरी बार, सिंध देश की विधानसभा के लिए जो चुनाव हुए उसमें काँग्रेस को विजयी बनाने में उनका बड़ा योगदान रहा। तीसरी बार,

चीन देश ने जब भारत पर हमला किया था, तब राष्ट्र-रक्षाकोष में पूज्य श्री लीलाशाह जी महाराज ने स्वयं दान दिया था एवं दूसरे लोगों को भी उदारता से दान देने के लिए प्रोत्साहित किया था।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

साहित्य-सेवा

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को यह विश्वास था कि सत्साहित्य, धर्म एवं नीति के शास्त्र ही मानव जीवन का निर्माण करने एवं जीवन की उन्नति के पथ पर ले जाने वाले हैं। इसी कारण से वे सिंध देश में साहित्य-सेवा करने में तल्लीन हो गये। उन्होंने सिंधी साहित्य की खूब सेवा की।

उन्होंने छोटी-बड़ी पुस्तकें सिंधी भाषा में लिखवायीं। इसके अलावा दूसरी वेदान्ती पुस्तकों का भी सिंधी भाषा में अनुवाद करवाकर छपवाना शुरू किया।

नीतिशास्त्र की प्रसिद्ध पुस्तक 'सारसूक्तावली', 'स्वामी रामतीर्थ का जीवनचरित्र', एवं 'सफलता की कुंजी' को गुरुमुखी भाषा में छपवाकर प्रसिद्ध किया। उस वक्त सिंध में गुरुमुखी भाषा का काफी प्रचार था।

प्रो. गोकुलदास भागिया के साथ 'वेदान्त प्रचार मंडल' की स्थापना की, जिसके द्वारा एक उच्च कोटि की मासिक पत्रिका 'तत्त्वज्ञान' को प्रकाशित करना शुरू किया। उसमें वेदान्त पर व्याख्यान दिये गये थे। इसके अलावा 'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण', 'सिद्धान्तसार', 'विचारसागर', 'पंचीकरण', 'रामवर्षा', 'विवेकचूड़ामणि' एवं वेदान्त के दूसरे कई उच्चस्तरीय ग्रंथों को प्रकाशित किया। 'विवेकचूडामणि' एवं 'विचारसागर' जैसे वेदान्ती ग्रंथों को केवल सिंधी भाषा में ही नहीं, वरन् गुरुमुखी भाषा में भी प्रकाशित करवाया। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज की प्रेरणा से अजमेर में सिंधी भाषा में 'आत्मदर्शन' नामक मासिक सामयिक भी प्रकाशित होने लगा जिसके संपादक श्री प्रभुदासजी ब्रह्मचारी थे।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज उच्च कोटि के कवि और चिन्तक भी थे। उन्होंने सिंधी भाषा में कितनी ही कविताएँ भी रचीं जिसका नाम 'लीलाशाह शतक' था। इसमें पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज द्वारा रचित सौ कविताओं, श्लोकों एवं भजनों का समावेश है।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने स्वयं कभी किसी स्कूल या कॉलेज में शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, फिर भी उन्हें साहित्य की सच्ची परख थी। वे जानते थे कि जीवन पर सत्साहित्य का बड़ा गहरा असर होता है। साहित्य मनुष्य के जीवन में, समाज में एवं देश में नई जागृति लाकर, लोगों को सच्ची राह बताकर, उन्नति के पथ पर चलने के लिए प्रेरित करता है। उनके

विचारानुसार 'सच्चा साहित्य वही है जिसमें सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के गीत गूँजते हों।' सत्यम् अर्थात् जो निजस्वरूप का मार्ग बताये। शिवम् अर्थात् जो कल्याणकारी एवं उच्च विचारोंवाला हो। सुन्दरम् अर्थात् जो सुंदर जीवन जीने की कला बताये। ऐसा साहित्य ही वास्तव में मानव जीवन का अमूल्य खजाना है। उन्होंने समाज की सेवा के लिए ऐसी ही पुस्तकों का प्रकाशन किया था।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज सिंध के अलग-अलग गाँवों एवं शहरों में जाकर प्रवचनों के माध्यम से वेदान्त के गहन रहस्यों को सरल भाषा में आमजनता तक पहुँचाते। उनका वेदान्त-प्रचार केवल भाषा में ही नहीं, वरन् उनके जीवन के कण-कण में समाया हुआ था। उन्होंने लोगों को समझाया कि जीवन में लाया गया वेदान्त का ज्ञान मनुष्य के संशयों को दूर करके उसे नारायण का अवतार बना देता है।

गर्मियों के दिनों में जब पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज नैनिताल के जंगलों में एकांतवास के लिए जाते तब अच्छी-अच्छी पुस्तकें इकट्ठी करके उनकी एक गठरी बनाकर सिर पर रखकर चलते। नैनिताल के पर्वतों से उतरकर आस-पास के पर्वतीय प्रदेशों में स्थित अलग-अलग गाँवों में जाते। घर-घर घूमकर गरीब लोगों को थोड़ा सत्संग सुनाते, प्रसाद बाँटते एवं अधिकारी, योग्य लोगों को पढाने के लिए पुस्तक देते हुए कहतेः

"भाई ! आज शुक्रवार है। आने वाले शुक्रवार के दिन मैं फिर इसी गाँव में आऊँगा तब यह पुस्तक ले जाऊँगा और दूसरी पुस्तक दे जाऊँगा। तब तक इसे पढ़ लेना और जो अच्छा लगे उसे याद रखना, लिख लेना। पूरी पुस्तक दो-तीन बार जरूर पढ़ना। इससे तुम्हें बहुत अच्छा ज्ञान मिलेगा, भगवान में प्रेम जगेगा, आत्मा का कल्याण होगा।"

इस प्रकार अलग-अलग अधिकार वाले लोगों को अलग-अलग तरह से प्रोत्साहित करते हुए पूरे गाँव में पुस्तक बाँट आते। दूसरे दिन दूसरे गाँव में जाते। इस प्रकार सत्संग एवं साहित्य का सदाव्रत चलाते। कहीं सप्ताह तो कहीं पंद्रह दिन पूरे होते तो पुनः उसी गाँव में जाकर पहले दी गयी पुस्तकें वापस लेकर, दूसरी पुस्तकें सप्ताह-पंद्रह दिन के लिए पढ़ने के लिए देते। सत्संग के दो मीठे वचन सुनाकर दुःखी, निराश एवं हतोत्साहित लोगों के जीवन में उत्साह भर देते। इस प्रकार वे सत्संग का चलता-फिरता एक अनोखा पुस्तकालय चलाते।

उन करूणावान् महापुरुष की कैसी करूणा !.... उस जमाने में तो सड़कों एवं वाहनों की भी सुविधा नहीं थी, फिर भी 80-85 वर्ष की उम्र तक पहाड़ी प्रदेश में सिर पर पुस्तकों की गठरी उठाकर पैदल चलते ! एक-एक व्यक्ति के जीवन में रस लेकर उसे सत्संग की तरफ मोड़ते। इस प्रकार साहित्य-सेवा के लिए उन्होंने जी कठोर परिश्रम किया, वह अदभुत था। जनहित के कार्यों में साहित्य-सेवा के द्वारा पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज का अमूल्य योगदान रहा है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

समाज के तारणहार बने

15 अगस्त 1947 के दिन संत-महात्माओं के शुभ संकल्पों एवं भारतवासियों के पुरुषार्थ से, भारत अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुआ। महात्मा गाँधी एवं दूसरे देशभक्तों का स्वप्न साकार हुआ। देश में चारों ओर प्रसन्नता की लहर छा गयी.... परन्तु दूसरी ओर इसी के साथ दुःखद घटना भी बनी।

अंग्रेज भारत में राज्य करते-करते हिन्दू एवं मुसलमान इन दोनों में जातिभेद बताकर, आपसी फूट डालकर उन्हें लड़ाते थे। भारत छोड़ते समय अंग्रेज भारत एवं पाकिस्तान ये दो भाग करके, देश के टुकड़े करके भारत के लिए अशांति, दुःख एवं मुसीबतों की आग जलाते गये। मलिन वृत्तिवाले मुसलमान हिन्दुओं पर खूब जुल्म ढाने लगे। वे लोग हिन्दू एवं सिक्खों को लूटते, बेईज्जती करते, मारपीट करते, खून-खराबा करते, बच्चियों एवं स्त्रियों की इज्जत लूटते, उन्हें उठा ले जाते।

हिन्दुओं की माल-मिल्कियत, इज्जत एवं धर्म की रक्षा का कोई उपाय न रहा। ऐसी खराब हालत में हिन्दुओं को पाकिस्तान छोड़कर भारत में आना पड़ा। पूर्व बंगाल के हिन्दू लोगों ने पश्चिम बंगाल एवं पश्चिम पंजाब के हिन्दुओं ने पूर्व पंजाब में आकर फिर से नयी जिंदगी शुरू की। उत्तर एवं दक्षिण की सीमा में रहने वाले लोग भी पूर्व पंजाब एवं दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में आकर रहने लगे। खास करके बलूचिस्तान एवं सिंध के हिन्दुओं को काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। पूर्व पंजाब, बिहार एवं दूसरे शहरों में से मुसलमानों ने सिंध एवं बलूचिस्तान पर चढ़ाई करके हिन्दुओं की जमीन-जायदाद पर कब्जा कर लिया। इसलिए विवश होकर ये लोग भी निराश्रित बन कर भारत में आश्रय लेने के लिए आये।

इन लोगों के रहने के लिए भारत सरकार ने अलग-अलग जगहों पर केम्प बना दिये जिससे वे निश्चिंतता की साँस ले सकें। अपनी जान बचाने के लिये, डर के मारे एक ही कुटुंब के व्यक्ति अलग-अलग जगह बँटकर दूर हो गये। अनजान भारत में भागकर आये हुए हिन्दुओं के पास रहने के लिए मकान नहीं, खाने के लिए अन्न का दाना नहीं, कमाने के लिए नौकरी-धंधा नहीं.... ऐसी स्थिति में इन लोगों को प्रेम, स्नेह, हमदर्दी एवं सहारे की सख्त जरूरत थी।

ऐसी विकट परिस्थिति में पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज उन लोगों के रक्षणहार, तारणहार एवं दिव्य प्रकाश के स्तंभरूप बने। पूज्यश्री लीलाशाहजी महाराज उन लोगों को समझाते कि 'दुःख एवं मुसीबत कसौटी करने के लिए ही आते हैं। ऐसे समय में धैर्य एवं शान्ति से काम लेना चाहिए।'

लोगों की दया जनक स्थिति देखकर, उन्होंने रात-दिन देखे बिना तत्परता से लोकसेवा शुरू कर दी। कभी दिल्ली, जयपुर, अलवर, खेड़थल, जोधपुर तो कभी अजमेर, अमदावाद, मुंबई, बड़ौदा, पाटण वगैरह स्थलों पर जाकर वे निःसहाय, दुःखी लोगों के मददगार बने। दुःखियों के

दुःख दूर करने, उन्हें नये सिरे से जिंदगी शुरू करने के लिए प्रोत्साहित करने एवं उन्हें जीवनोपयोगी वस्तुएँ दिलाने में उन्होंने अपनी जरा भी परवाह नहीं की।

महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, राजस्थान के राजाओं एवं काँग्रेस के आगेवानों के साथ उनका खूब अच्छा संबंध था। पहले से ही पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज उन लोगों के पूजनीय एवं आदरणीय बन गये थे अतः वे लोग भी सिंध से आये हुए हिन्दुओं के लिए सहायक बने। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज राजस्थान, गुजरात, उत्तर भारत एवं जहाँ-जहाँ सिंध तथा बलूचिस्तान के हिन्दू सिक्ख बसे थे वहाँ-वहाँ जाकर उन लोगों के साथ बैठकर सारी जानकारी लेते थे एवं जरूरत के मुताबिक उन लोगों को मकान, कपड़े, पैसे, नौकरी एवं अन्य जीवनोपयोगी वस्तओं की व्यवस्था करवा देते थे।

शायद सिंधी अपना धर्म न भूल बैठें एवं अपनी संस्कृति को न छोड़ दें, इसलिए पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज बारंबार धर्म के अनुसार जीवन जीने का उपदेश देते। आलस्य छोड़कर, पुरुषार्थी बनने का, अपनी अक्ल-होशियारी से स्वावलंबी बनने का एवं उन्नत जीवन बनाने का मार्गदर्शन देते। भीख माँगकर रहने या सरकार के भरोसे रहने की जगह पर स्वाश्रयी बनकर लोगों को नौकरी-धंधा करने की सलाह देते। किसी को नौकरी, किसी को खेती-बाड़ी तो किसी को धंधा करने का प्रोत्साहन देते। कई जगहों पर बच्चों के लिए स्कूल भी बनवा देते। लोगों के जीवन को उन्नत बनाने के लिए केवल सत्संग की भाषा ही नहीं, वरन् वीरता, सदाचार, संयम, निर्भयता जैसे सदगुणों को बढ़ाने का भी संकेत करते। इस विषय की धार्मिक पुस्तकें सिंधी लोगों में बाँटते। उस समय उन्होंने स्वामी श्री रामतीर्थ के प्रमुख शिष्य नारायण स्वामी की लिखी हुई पुस्तक 'उन्नति के लिए दुःख की जरूरत' को सिंधी भाषा में छपवाकर, उसे सिंधी लोगों में बाँटकर लोगों के मनोबल एवं आत्मबल को जागृत करते।

इस प्रकार पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के अथक परिश्रम एवं करूणा-कृपा के फलस्वरूप सिंधी लोग पुरुषार्थी बनकर, अपने पैरों पर खड़े रहकर, प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ते हुए, इज्जत एवं स्वाभिमान से रहने लगे। **आज सिंधी लोग भारत एवं विदेशों के कोनेकोने में रहकर मान-प्रतिष्ठा एवं समाज में उच्च स्थान रखते हैं। यह पूरा शानदार गौरव्रप्रेम एवं करूणा की साक्षात् प्रतिमास्वरूप पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को जाता है ऐसा कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है।**

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को हमेशा यही फिक्र रहती कि अपने देशवासियों को किस प्रकार सुखी एवं उन्नत बनाऊँ? इसके लिए उन्होंने बहुत मेहनत करके मकानों के साथ स्कूलें, रात्रि पाठशालाएँ, पुस्तकालय एवं व्यायामशालाएँ स्थापित करवायीं। जहाँ-जहाँ वे जाते वहाँ-वहाँ कसरत सिखाते। शरीर स्वस्थ रखने के लिए यौगिक क्रियाओं के साथ प्राकृतिक उपचार बताते। यदि कोई बीमार व्यक्ति उनके पास जाता तो उसे दवा तो नाममात्र की देते, बाकी तो उनके

आशीर्वाद से ही सब अच्छे हो जाते। जब राह भूले नवयुवान अपने यौवन का नाश करके उनके पास मदद माँगते तब वे उन्हें सत्संग सुनाते, प्राचीन भक्तों एवं वीर पुरुषों का वार्ताएँ कहते। उन लोगों को कसरत एवं यौगिक क्रियाओं के साथ प्राकृतिक इलाज बताते। सदाचारी बनने के लिए पुस्तकें भी देते। उन्होंने ऐसे हजारों नवयुवानों का जीवन स्नेह की छाया एवं उच्च मार्गदर्शन देकर सुधारा था।

सिंध से अपना घर-बार, जमीन-जागीर खोकर जो लोग भारत में स्थायी हुए थे उनके लिए पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज का उद्देश्य था उन लोगों के धर्म, संस्कृति, संस्कार एवं इज्जत की रक्षा करने का, किन्तु यह देखकर उनके दिल को खूब आघात पहुँचा कि वे लोग अपने धर्म, संस्कार एवं संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। बहनों में फैशन नग्नता एवं भोग-विलास बढ़ता जा रहा है। बहनें सिंध की अपेक्षा भी ज्यादा आभूषण पहनकर धनवान होने का दिखावा करती है। उन्होंने देखा कि भौतिक सुखों की वजह से सिंधी लोगों में सामाजिक रोग जैसे शादी-विवाह में अधिक खर्च, बाह्य आडंब, शराब-कबाब का उपयोग, महफिलें, नाच-गान एवं फैशन आदि बढ़ता जा रहा है।

एक बार पूज्यश्री लीलाशाहजी महाराज अजमेर में शिक्षक परसराम मोती के घर पर ठहरे थे। उस समय उन्होंने देखाकि समाज में ज्यादा दहेज देने की बुरे रिवाज के कारण गरीब कन्याओं के विवाह बड़ी उम्र तक नहीं हो पाते थे जिसकी वजह से कई लड़कियाँ खराब मार्ग पर चली जातीं या फिर धर्म बदलकर दूसरे धर्म के लड़के के साथ विवाह कर लेतीं।

ऐसी परिस्थिति देखकर पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के कोमल एवं दयालु दिल को बहुत दुःख हुआ। वहीं उन्होंने घोषणा कीः

"जब तक शरीर में प्राण होंगे तब तक कुटिल दहेज-प्रथा को जड़मूल से निकालने का प्रयत्न करता रहूँगा। यही मेरे लिए एक अश्वमेध यज्ञ होगा।"

बस, उसी दिन से उन्होंने दहेज के प्रति 'इन्कलाब जिंदाबाद' शुरू कर दिया। उस समय के दौरान 20-25 दिन तक पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज अजमेर में ही रहे। वहाँ वे रोज सुबह में सत्संग देते, फिर अलग-अलग मुहल्लों में जाकर दहेज-प्रथा के उन्मूलन के लिए सलाह देते हुए कहतेः

"दहेज एक पाप है। अतः लड़कियों के माता-पिता खून न चूसें।"

उन्होंने लड़कों के माता-पिताओं को पत्र भी लिखे कि 'दहेज मत लेना। जिन शादी-विवाहों में दहेज लिया जाता हो उनमें उपस्थित मत हो।' युवकों को भी दहेज के साथ शादी करने के लिए मना किया। युवती लड़कियों को भी सीख दी कि अपना स्वाभिमान मत बेचो। दहेज माँगनेवाले के साथ शादी मत करो।

इस आंदोलन पर कुछ पत्रकारों ने लिखाः

"जहाँ इतने बड़े आगेवान भी कुछ न कर सके वहाँ आप व्यर्थ मेहनत कर रहे हैं एवं समय बिगाड़ रहे हैं। इससे कुछ भी परिवर्तन होने वाला नहीं है। यह तो पर्वत के साथ मस्तक को भिड़ाने जैसा है। पर्वत का तो कुछ नहीं होगा किंतु अंत में अपने ही सिर पर लगेगा।" यह समाचार पढ़कर पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने हँसते-हँसते जवाब दियाः

"भारत में अंग्रेज राज्य करते थे, तब विश्व में उनका साम्राज्य इतना विशाल था कि उसमें सूर्य अस्त नहीं होता था। तब भी लोग ऐसा ही कहते थे कि अंग्रेज पर्वत के समान हैं। उन लोगों के साथ सिर टकराने से अपना ही सिर फूटेगा। किन्तु ऐसे अंग्रेजों को भी अंत में बिस्तर बाँधने पड़े। लीलाशाह ऐसी धमकियों से घबराने वाले नहीं हैं।"

उन्होंने लोगों से कहा कि दीन-हीन मत होना। कठिन से कठिन परिस्थितियों के आगे भी झुकना मत।

हमें रोक सके ये जमाने में दम नहीं।
हमसे जमाना है जमाने से हम नहीं।।

उन्होंने इस आंदोलन को भारत के प्रत्येक शहर एवं गाँव में जाकर चलाया। सत्संग में, स्कूलों में, महिला मंडलों में एवं सरपंचों की सभा में दहेज-कुप्रथा के ऊपर बुलंद आवाज से लोगों में जागृति लानी शुरू कर दी।

इस कार्य के लिए उन्हें लोगों के संगठन की जरूरत भी महसूस हुई। मुंबई के सिंधी लोगों ने यह जवाबदारी ले ली। युवान खूबचंद भाग्या ने इस कार्य में सबसे ज्यादा भाग लिया। उन्होंने पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के आशीर्वाद से 'अखिल भारतीय सिंधी समाज सेवा सम्मेलन' की स्थापना की, जिसके द्वारा यह आंदोलन जारी रहा। थोड़े समय के बाद भारत के सिंधी सामाजिक कार्यकर्ताओं की सभा हुई। मुंबई के द्वारा यह आंदोलन भारत के कोने-कोने में फैलने लगा। उसका इतना जोरदार असर हुआ कि अनेकों माता-पिता एवं नवयुवक दहेज लिए बिना ही शादी करने लगे।

उसके दूसरे वर्ष 13 मई, 1957 में दूसरा 'अखिल भारतीय सिंधी समाज सम्मेलन' अजमेर में आयोजित हुआ। इस सम्मेलन के मुख्य अध्यक्ष डॉ. चोईथराम गिदवाणी थे। अचानक आयी हुई गंभीर बीमारी की वजह से वे उपस्थित न रह सके, तब उनकी ओर से उनके सहायक के रूप में प्रोफेसर घनश्यामदास शिवदासानी आये। उन्होंने उस सम्मेलन का उदघाटन किया एवं डॉ. चोईथराम के हाथों लिखा गया भाषण पढ़ा जिसमें दहेज के साथ-साथ दूसरी भी सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने एवं सुधार करने की बातों का उल्लेख था।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज अलग-अलग शहरों में जाकर पंचायतों द्वारा सामाजिक सुधार के कार्य करवाते रहे। उन्होंने कहाः

"सुधार तो अपने घर से ही शुरू करना चाहिए। घर के बाद पड़ोस, समाज, शहर.... फिर दायरा बढ़ाते-बढ़ाते देश एवं फिर पूरी मनुष्य जाति तक विस्तार करना चाहिए।"

इस बात को लक्ष्य में रखकर उन्होंने पहले अपने ब्रह्मक्षत्रिय समाज की तरफ ध्यान दिया। इस समाज में जो कमियाँ थीं, वे धीरे-धीरे दूर हो गयीं। पंचायतों में एकता आने लगी। इस कारण ब्रह्मक्षत्रिय समाज के लोग पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को 'अवतारी पुरुष' के रूप में पूजने लगे। सभी पंचायतों ने एकत्रित होकर एक 'अखिल भारतीय ब्रह्मक्षत्रिय सम्मेलन' की स्थापना की। यह सम्मेलन भारत के विभिन्न शहरों में होने लगा जिसका नेतृत्व पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज स्वयं करते। उनकी ही प्रेरणा से ब्रह्मक्षत्रियों के शिक्षा केन्द्र के प्रचार के लिए एक बड़ा फंड जमा किया गया, जिसमें से योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति, विधवा एवं गरीबों को आर्थिक मदद एवं बेरोजगारों के लिए नौकरी-धंधे की व्यवस्था की गयी।

जिस प्रकार ब्रह्मक्षत्रिय समाज पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को 'अवतारी पुरुष' मानने लगा उसी प्रकार लाड़ अथवा दक्षिणी सिंध के लोग भी उन्हें अपना मार्गदर्शक, उद्धारक एवं साक्षात् परब्रह्म परमात्मा समझकर उनकी पूजा करने लगा। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने उन लोगों की पंचायत में भी एकता लाकर वहाँ 'अखिल भारतीय लाड़ पंचायत सम्मेलन' की स्थापना की एवं उसके द्वारा समाज-सुधार के कार्य शुरु किये।

किन्तु फिर से सिंधियों के घरों की बिगड़ती हुई खराब परिस्थितियों से वे अनभिज्ञ न रहे। घर में बढ़ती खटपट, सास-बहू, ननद-भौजाई एवं पति-पत्नी के बीच बढ़ते झगड़े उनकी नज़रों से ओझल न थे। उन्होंने गृहस्थियों के घरों को नरक बनते देखा, लड़कियों एवं स्त्रियों के चरित्र को बिगड़ते हुए देखा, जिसके मुख्य कारण थे सिनेमा एवं टेलिविजन। युवतियों में नग्नता, वेश्यावृत्ति एवं फैशन बढ़ने लगी, बुराइयों की बदबू बढ़ने लगी, लोग धर्म-कर्म से भ्रष्ट होने लगे। पूजा-मंदिर के बदले सिनेमाघर आ गये।

उस समय सिनेमा के विरुद्ध आचार्य विनोबा भावे, आचार राजगोपालाचार्य एवं देश के दूसरे आगेवानों ने प्रचार किया। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने गीताप्रेस, गोरखपुर की ओर से सिनेमा के विरुद्ध छपी हुई हिन्दी पुस्तकों का सिंधी भाषा में भाषान्तर करवाकर 10000 प्रतियाँ लोगों तक पहुँचायी। उन्होंने बहनों एवं बच्चियों को चमकते आभूषण, जवाहरात एवं फैशनवाले कपड़े पहनना छोड़कर सादगी अपनाने के लिए कहा।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को अपनी मातृभाषा सिंधी के लिए अत्यंत प्रेम था। मुगलों एवं अंग्रेजों के शासन के दौरान लुप्त बनी हुई सिंधी भाषा के पुनरुत्थान के लिए उन्होंने काफी परिश्रम किया। अंग्रेजी भाषा के प्रभाव में आकर सिंधी बच्चे अपनी मातृभाषा सिंधी से विमुख हो रहे थे। उस समय सिंधी समाज को सावधान करने के लिए उन्होंने जो कहा था वह सिंधी भाई-बहनों के लिए आत्मसात् करने योग्य है। सिंधी भाषा की महत्ता बताते हुए उन्होंने कहा थाः

"मैं सिंधी भाषा पर इसलिए कुर्बान हूँ कि सिंधी भाषा में जो विविधता है ऐसी विविधता आपको और कोई भाषा में मिलेगी नहीं। इसमें पारसी, गुजराती, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी जैसी अनेक भाषाओं का समन्वय हुआ है। मानो सात नदियाँ मिलकर बनी हुई एक सिंधु नदी।

सिंधी भाषा एक गुलदस्ते जैसी है। इसमें सब भाषाओं के शब्द एक-एक पुष्प का रूप धारण करके आये हैं।"

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज की दीर्घ दृष्टि ने यह देख लिया कि सिंधी समाज में उलटी गंगा बह रही है । सिंधी समाज तेजी से जिस ओर विकसित हो रहा है उस पर आगे यदि बाँध न बाँधा गया तो उसका नामो निशान नहीं रह पायेगा। सिंधी लोग तभी सिंधी कहे जायेंगे जब वे लोग सिंधी भाषा बोलेंगे। प्रत्येक जाति अपनी मातृभाषा के कारण ही अपना अस्तित्व बनाये रखती है। अगर ये लोग अपनी मातृभाषा ही भूल जायेंगे तो इन लोगों की हस्ती ही न बचेगी।

उन्होंने देखा कि सिंधी लोग अपनी मातृभाषा भूलते जा रहे हैं। अतः उन्होंने एक जबरदस्त आंदोलन शुरु किया कि सिंधी भाषा सीखो, बोलो और लिखो। याद रखो कि सिंधी कोई खराब भाषा नहीं है। सिंधी तो मूल संस्कृत की भाषा है। इसमें संस्कृत भाषा की कितनी ही विलक्षणताएँ समायी हुई हैं ! उन्होंने सिंधी भाषा में लिखी गयी असंख्य पुस्तकें पढ़ने का निर्देश दिया।

इस प्रकार पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने सिंधियों के प्रत्येक क्षेत्र पर बारीकी से ध्यान देकर जहाँ त्रुटियाँ लगीं वहाँ सुधार करवाये।

उन्होंने देखा कि देश में अराजकता एवं अशांति फैल रहीं है। धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार हो रहा है, पाखंड बढ़ता जा रहा है एवं सिंधी लोग अपने धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। विधर्मी लोग भोलेभाले लोगों को धर्म के नाम पर हिन्दू धर्म से भ्रष्ट करते जा रहे हैं। चारों तरफ रोज नये-नये पंथ निकालते जा रहे हैं। कई लोग अपने को भगवान के नाम से विख्यात करके अपनी पेटपूजा करते हैं। बड़े-बड़े मठ-मंदिर बनवाते जाते हैं। ऐसे लोग भोले हिन्दुओं से कहतेः

"तुम हमारे पास से मंत्रदीक्षा ग्रहण करो। हम तुम्हें मोक्ष दिलवा देंगे। तुम्हें एक क्षण में भगवान के दर्शन करवा देंगे।"

ऐसे पाखंडी भोली माताओं एवं बहनों को बहकाकर, उन्हें अपने धर्म से विमुख करके गुमराह करते थे। उन लोगों के विरूद्ध पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज नवयुवकों को समझातेः

"युवानों ! जागो। पाखंडियों का भांडा फोड़ दो। उन लोगों की बुरी नजर तुम्हारे पर है। तुम स्वयं ही अपने-आपका उद्धार कर सकते हो। अपनी माता एवं बहनों की विधर्मियों से बचाओ।"

उन्होंने स्पष्टतापूर्वक कहाः

"तुम्हें गुरु नहीं तारेंगे, वरन् तुम्हें स्वयं ही तरना होगा। गुरु तुम्हें केवल मार्ग बतायेंगे। चलकर तो तुम्हें स्वयं ही पहुँचना होगा।"

जिज्ञासुओं से वे कहतेः

"षट्संपत्ति धारण करके परमात्मा के विषय में श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करते रहो। अपने आचार-विचार, व्यवहार एवं आहार को शुद्ध रखो।"

संसारियों से वे कहतेः

"संसार की मायाजाल से अपने को छुड़ाकर परमार्थ के मार्ग पर चलोगे तभी सच्चा आनंद एवं सच्चा सुख प्राप्त कर सकोगे। मंदिर और मस्जिद में जाकर, सिर नवाकर, पोथियाँ पढ़कर, किसी के पैर दबाकर या पंखा झलकर तुम्हारा उद्धार नहीं होने वाला है। वरन् दैवी गुणों को धारण करके, संत समागम एवं सत्शास्त्रों का पठन करके तुम्हारा जीवन सफल होगा। जीव मात्र में परमात्मा का दर्शन करो।"

मूक प्राणियों के लिए भी उनका दिल रो पड़ता। कुत्ते, बिल्ली या किसी भी प्राणी की पीड़ा को वे सहन नहीं कर सकते थे। एक बार एक कुत्ते के पैर को घायल देखकर उन्होंने उसकी मालिश करके दवा लगाकर उपचार किया। लोगों को भी मूक प्राणियों को मारकर उनके मांस जैसा तामसी आहार न खाने की सलाह देते और कहतेः

"जिन जीवों को मारकर तुम खाते हो उनमें भी तुम्हारी ही तरह प्राण हैं। मांस, अण्डे, मछली आदि खाकर अपने पेट को श्मशान मत बनाओ। ऐसा आहार करने से विचार विकृत एवं मलिन होते हैं।"

उन्होंने बाल्यकाल में कोई ऐहिक शिक्षा नहीं ली थी फिर भी वे ज्ञान के सागर थे। धन-संपत्ति तो उनके पैर पखारती थी। वे धन के दास नहीं परंतु धन के स्वामी बने। श्रद्धालु, सज्जन एवं भक्तजन जो भी दान-दक्षिणा उनके श्री चरणों में रखते उसे वे अपने पास नहीं रखते थे बल्कि दरिद्र लोगों, विधवाओं, गरीब विद्यार्थीयों, बीमारों के लिए एवं दूसरे जरूरतमंद लोगों की सहायता आदि लोकोपकारी कार्यों के लिए दे देते। उनके भक्तों ने साथ मिलकर जिन धर्मशालाओं, स्कूलों एवं आश्रमों आदि का निर्माण किया उन्हें वे ट्रस्टियों के हवाले करते गये। इस प्रकार वे हमेशा विरक्त एवं निर्लेप नारायण होकर ही रहे।

वे हमेशा अपने रचे हुए गीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ गुनगुनाते एवं अपने श्रोताओं को सुनातेः

चार दिन की जिंदगानी में.....
तन से, मन से हमेशा के लिए
रहता नहीं इस दारे फानी में।
कुछ अच्छा काम कर लो
चार दिन की जिंदगानी में।।
तन से सेवा करो जगत की
मन से प्रभु के हो जाओ।
शुद्ध बुद्धि से तत्त्वनिष्ठ हो

मुक्त अवस्था को तुम पा लो।।

इस प्रकार उनका पूरा जीवन परोपकारमय था। उनकी नस-नस में परहित की भावना के सिवाय कुछ न था। उनका जीवन-संदेश थाः

"जब तक शरीर में प्राण हैं तब तक भलाई के कार्य करते रहो।"

अलग-अलग क्षेत्रों में उन्होंने अनेकों लोककल्याण के कार्य किये किन्तु कर्तापने का भाव न रखा। वे नम्रता एवं निष्कामता की साक्षात् प्रतिमा थे।वे हमेशा कहतेः

"अलग-अलग जगहों पर कोई महान् शक्ति द्वारा ये कार्य होते हैं। लीला तो कुछ भी नहीं करता।"

वे हमेशा शरीर पर खादी का कुर्ता पहनते, सिर पर सूती खादी का टुकड़ा बाँधते एवं नीचे कच्छा पहनते। प्रातःकाल उठकर आसन-प्राणायाम करते, पंचदशी जैस ग्रंथ को किसी साधक द्वारा पढ़वाते और आसन करते-करते सुनते। आसन करने के बाद स्वास्थ्य के लिए हितकारी सेवफल लेते जो कि दिल-दिमाग को शक्ति देने वाला है। चाय-कॉफी जैसे पेय से दूर रहने की प्रेरणा भी देते।

दोपहर को सादा भोजन चबा-चबाकर खाते। शाम को मोसम्मी का रस या बादाम की ठंडाई लेते। शरीर के स्वास्थ्य के लिए जो वस्तुएँ अनुकूल न होतीं उन्हें कभी न खाते।

पाठक भी ऐसा नियम लें तो कितना अच्छा !

सोने के लिए नरम बिस्तर का उपयोग न करते। भूमि पर केवल बोरा बिछाकर अथवा बिस्तर पर बोरा बिछाकर सो जाते। अपने सभी काम स्वयं ही करते। वे हमेशा कहतेः "गुदड़ी मेरे कंधे पर और रोटी राज्य पर है।"

उनका शरीर एकदम हल्का फूल जैसा था। उनके शरीर में हमेशा खूब स्फूर्ति रहती। वे 80 वर्ष की उम्र में भी जब चलते तब उनके साथ के नौजवानों को दौड़ना पड़ता। बड़ी उम्र होने पर भी कठिन से कठिन आसन को भी वे बड़ी सरलता से कर लेते और लोगों को भी उसे करने की प्रेरणा देते। उनमें हमेशा जवानी का जोश झलकता था।

पूज्य श्री लीलाशाह जी महाराज की सबसे बड़ी विलक्षणता यह थी कि उनकी कथनी एवं करनी में कोई भेद न था। वे बोलते तब उनकी वाणी भीतर की गहराई में से निकलती। अतः सुननेवाले के ऊपर उनके उपदेश का गहरा प्रभाव पड़ता। वे एक विशाल वटवृक्ष की तरह थे, जिसकी छाया में हजारों लोगों ने विश्राम पाया। वे जहाँ-जहाँ पधारते, वहाँ-वहाँ जिज्ञासुओं को उपदेश देते, योग एवं आसन सिखाते, साथ-ही-साथ पाठशाला, धर्मशाला, व्यायामशाला एवं गौशाला खोलने की प्रेरणा देते। आगरा में उनकी प्रेरणा से स्थापित 'श्रीकृष्ण गौशाला' एक आदर्श गौशाला है। उसके साथ एक कुआँ, खेत, बगीचा, अतिथिगृह, सत्संग मंडप एवं पुस्तकालय भी बनाया गया है।

कानपुर में किसी ने एक बड़ा मंदिर पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को अर्पित किया तो उन्होंने उसे आश्रम बनाकर ट्रस्टियों के हवाले सौंप दिया। गोधरा में भी जिज्ञासुओं के साधना करने के लिए एक आश्रम की स्थापना की।

वे कभी-भी किसी एक जगह पर स्थिर होकर नहीं बैठे। आज यहाँ तो कल वहाँ। उड़ते पक्षी की तरह घूमते ही रहे। कल वे कहाँ होंगे यह कोई नहीं कह सकता था। भारत का कोई भी ऐसा कोना बाकी नहीं रहा होगा, जो उनकी चरणरज से पावन न हुआ हो। वे जहाँ जाते वहाँ उपदेश देने के अलावा जिज्ञासुओं की व्यक्तिगत उन्नति में भी रूचि रखते थे। जहाँ-जहाँ जाते वहाँ-वहाँ वेद, उपनिषद, ब्रह्मज्ञान वगैरह का उपदेश देकर आध्यात्मिकता के संस्कार सींचते थे।

उनका व्यक्तित्व ऐसा अनोखा था कि क्षणमात्र में ही वे सबको अपना बना लेते और खुद भी सबके बन जाते। उनके पास आमजनता से लेकर बड़े-बड़े संत, राजनेता, प्रख्यात किये जाने वाले व्यवहार में सहिष्णुता, चित्त की सरलता, उदारता, सौम्यता, आत्मीयता, सत्यता, निर्मलता वगैरह गुण सहज ही झलक उठते।

उनके प्रत्येक क्रिया-कलापों का अवलोकन करते हुए प्रतीत होता था कि उनके सान्निध्य मात्र से उनके पास जाने वाले साधकों का दिल पावन होता, चित्त की चंचलता कम होती एवं हृदय संतप्रेम में पावन हो जाता।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विदेशयात्रा

संतो के लिए कौन अपना और कौन पराया? 'अपना-पराया' यह तो मानव की संकीर्ण मति की उपज है। संतों को तो **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** के अनुसार पूरा विश्व ही अपना कुटुम्ब लगता है।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने केवल भारतवासियों में ही धर्म, संस्कृति और सदाचार का प्रसाद देकर उनको सच्चा मार्ग बताया था ऐसी बात नहीं है वरन् विदेशों में जाकर, गौरवमयी भारतीय संस्कृति का प्रचार करते हुए वहाँ क लोगों तक भी ऋषि-मुनियों के पावन संदेश को पहुँचाया था।

उन्होंने देखा कि व्यापार के लिए देश में से गये हुए हिन्दू विदेश में ही बस गये हैं। वहाँ मायावाद की लहर ने उन्हें भी चपेट में ले लिया है। वे वहाँ पश्चिमी देशों के भौतिकवाद का अनुसरण करके मानवजीवन का लक्ष्य भूलते जा रहे हैं। भारत के आर्य, ऋषि-मुनियों की संतान होने के बावजूद वे अपने धर्म, उच्च संस्कार, कर्तव्य एवं संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। उनका रहन-सहन बदल चुका है। वे समझते हैं कि मनुष्य जन्म खाने पीने एवं मौज-मजा करने के

लिए ही मिला है। धन इकट्ठा करना ही जीवन का लक्ष्य है। ऐसी बेजवाबदारी एवं बेपरवाही से जीवन जीते अपने देशवासियों को भौतिकवाद के चंगुल से बचाने के लिए एवं ऋषि-मुनियों के ज्ञान-संदेश को उन तक पहुँचाने के लिए पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज तत्पर हो उठे।

श्रद्धालु भक्तों के प्रेम भरे आमंत्रण को स्वीकार करके पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज पूर्व एशिया जाने के लिए तैयार हुए। उन्होंने 2 जनवरी 1961 की रात्रि को साढ़े आठ बजे मुंबई के एयरपोर्ट से हवाई जहाज द्वारा पूर्व एशिया के लिए प्रस्थान किया। उनकी विदेशयात्रा के समय निकट रहने वाले एक भक्त ने उनकी विदेशयात्रा का वर्णन करते हुए कहा हैः

"एयरपोर्ट पर असंख्य लोग उनके दर्शन एवं स्वागत के लिए फूलमालाएँ लेकर आतुर नयनों से प्रतीक्षा कर रहे थे। जिनकी उपस्थिति मात्र से संपूर्ण प्रकृति भी उल्लसित हो उठती है ऐसे अपने प्यारे गुरुदेव के दर्शन से भक्तों के हृदय खिले बिना कैसे रहते? पूज्य स्वामीजी श्रीलीलाशाहजी महाराज के सिंगापुर आगमन के साथ ही भक्तों की आतुरता का अंत आया।"

सिंगापुर में माऊन्ट बेटन रोड पर स्थित सिंधी एसोसियेशन क्लब में उनके आवास की व्यवस्था की गयी थी। इन अलख के औलिया के सिंगापुर के निवास के दौरान् अनेकों लोगों को उनके सत्संग-कथामृत का लाभ मिला। उनके निवास-स्थान पर रोज सुबह 7 से 9 बजे तक लोगों को दर्शन, सत्संग एवं यौगिक क्रियाएँ भी सीखने का सुनहरा अवसर मिलता एवं शाम के 7 से 9 बजे तक परम भाग्यवान भक्तों को सत्संग का लाभ मिलता।

पूज्य स्वामी जी अत्यंत सरल एवं सचोट भाषा में मानव जीवन का ध्येय एवं सदगुरु का महत्त्व समझाते हुए कहतेः

"प्रत्येक मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है अपने को जानना और परमात्म-प्राप्ति के मुख्य ध्येय को पाने के लिए प्रयत्न करना। जिस प्रकार किसी व्यक्ति को भारत में काशी या मथुरा जैसे दूर के स्थलों की यात्रा पर जाना हो तो उस स्थल पर कैसे जाया जा सकता है यह जानने के लिए मार्ग बतानेवाले मार्गदर्शक की जरूरत पड़ती है, उसी प्रकार परमधाम तक पहुँचना हो, ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति करनी हो तो ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग में से जो भी अनूकूल पड़ता हो उस मार्ग को ग्रहण करने की जरूरत पड़ती है एवं यह बताने के लिए भी संत, महात्मा एवं सदगुरु जैसे मार्गदर्शक की जरूरत पड़ती है। ऐसे महात्मा एवं सदगुरु अधिकारी साधक की योग्यता देखकर उस मार्ग पर चलने का उपदेश एवं मार्गदर्शन देते हैं। उनके उपदेशानुसार चलने से साधक निर्विघ्न होकर परमात्म-प्राप्ति के लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

संतों का सहज स्वभाव है उपदेश द्वारा मार्ग बताना एवं जिज्ञासुओं का कर्त्तव्य है बताये गये मार्ग पर चलना एवं सदैव उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहना। यदि कोई काशी या मथुरा जाने के लिए केवल मुँह से बात ही करे और वहाँ जाने का कोई प्रयास न करे तो वह कभी-भी काशी या मथुरा नहीं पहुँच सकता।

चलो चलो सब कोई कहे, विरला पहुँचे कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुर्गम घाटी दोय।।

मोक्षमार्ग पर चलने की बात तो सभी करते हैं परन्तु पहुँचते कोई विरले ही हैं। उस मार्ग पर जाने के लिए दो विघ्न आते हैं- एक काम और दूसरा कंचन या धन।

मृत्यु के समय संसार की सारी धन-संपत्ति को यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा। शरीर को भी यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा। भगवान वेदव्यास कहते हैं कि धन, हीरे-मोती, आभूषण वगैरह सब यहीं पेटियों में रह जायेगा। मकान, गाड़ी, हाथी-घोड़े भी यहीं रह जायेंगे। स्त्री-पुत्र, कुटुंब-परिवार वगैरह भी यहीं रह जायेंगे। संबंधीजन भी स्मशान तक जाकर तुम्हारी देह को जलाकर निराश होकर वापस आ जायेंगे। केवल धर्म ही तुम्हारे साथ रहेगा। धर्म ही जीव का सच्चा मित्र है जो मृत्यु के बाद भी साथ रहता है। अतः भगवान को याद करो। परमात्मा के नाम को खूब जपते रहो। **जो भी पदार्थ, प्रसंग, व्यक्ति या संबंध दिखाई देते हैं, वे स्वप्न की तरह मिथ्या हैं – ऐसा समझो। मिथ्यात्व की भावना दृढ़ करके संसार की आसक्ति छोड़ो।** इस जगत में जानने जैसा, अनुभव करने जैसा एवं पाने जैसा जो है वह है आत्मा का ज्ञान। आज से ही निश्चय करो किः

'इस जन्म में ही उस सत्य स्वरूप आत्मा को जानकर मुक्त हो जाऊँगा। मुझे दूसरा जन्म नहीं लेना है।'

ऐसा निश्चय बारंबार करना चाहिए।"

इस प्रकार पूज्य स्वामी जी ने मानव जीवन के मुख्य लक्ष्य एवं सदगुरु की महत्ता के ऊपर प्रकाश डाला। शाश्वत एवं नश्वर का भेद समझाकर श्रोताओं की विवेक-बुद्धि को जागृत किया। भोग के बदले योगमय जीवन जीने की प्रेरणा दी। श्रद्धालुजनों को चौरासी के चक्कर से मुक्त होने का उपाय बताकर उसके लिए प्रयत्नशील रहने का निर्देश दिया।

15 जनवरी तक सिंगापुर के भक्तों को ज्ञान-गंगा में सराबोर दिनांकः 17 जनवरी को मलाया फेडरेशन की यात्रा के लिए पधारे। उन्होंने जिस आत्मज्ञानरूपी खजाने को प्राप्त किया था, उससे बहुत लोग लाभान्वित होते थे। उनके मुखकमल से निःसृत सत्संग-गंगा अनेकों लोगों को शीतलता प्रदान करती एवं आत्मिक आनंद से पावन करती थी। संसार के क्षुद्र व्यवहार एवं कार्यों में अमूल्य मानव जन्म को बरबाद करते हुए अज्ञानी जीवों को मानवजीवन की महत्ता समझाते हुए उन्होंने कहाः

"कीमती मानवदेह को पाकर, उसका सदुपयोग करके आत्मज्ञान नहीं पाओगे तो अंत में पछताने के सिवा कुछ भी हाथ न लगेगा।"

पूज्य स्वामीजी सत्संग के दौरान् बार-बार कहतेः

लख चौरासी जनम गँवाया।
बड़े भाग मानुष तन पाया।।

"मानव जन्म बड़े भाग्य से मिलता है। यह मनुष्य जन्म आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, मुक्ति एवं अखंड आनंद की प्राप्ति के लिए ही मिला है..... परमात्मा के साथ एक हो जाने के लिए मिला है। इस अमूल्य मानव देह को पाकर भी इसकी कद्र न की तो फिर मनुष्य जन्म पाने का क्या अर्थ है? फिर तो जीवन व्यर्थ कही गया। यह मनुष्य जन्म फिर से मिलेगा कि नहीं, क्या पता? कबीरजी ने कहा हैः

कबीरा मनुष्य जन्म दुर्लभ है,
मिले न बारम्बार.....

कभी बचपन था, वह चला गया। जवानी आयी, वह भी जा रही है। वृद्धावस्था आयेगी, वह भी चली जायेगी.... मृत्यु आयेगी तब रोना पड़ेगा। इस बात को यदि तुम अभी समझ लोगे और हमेशा याद रखोगे तो तुम्हें संसार की तृष्णाएँ नहीं सतायेंगी और तुम्हें अपने लक्ष्य का स्मरण बना रहेगा। भगवान को खूब याद करो। मन, बुद्धि एवं चित्त को भोग से हटाकर भगवान में लगा दो। भोग भोगने से भगवान कभी नहीं मिलते। भोग में रोग हैं अतः भोगों को छोड़ो।"

पूज्य स्वामी जी की मधुर अमृतवाणी से भक्तों एवं साधकों को अदभुत प्रेम एवं आनंद की अनुभूति हुई।

उसके पश्चात् पूज्य स्वामीजी ने कोलालम्पूर में स्वामी विवेकानन्द आश्रम में तीन दिन तक निवास किया। वहाँ भी सुबह दो घण्टे तक आसन, योग क्रियाएँ एवं प्राकृतिक उपचार बताते। शाम को 7 से 9 तक सनातन धर्म सभा मंदिर में सत्संग करते।

सत्संग में पूज्य स्वामीजी ने लोगों को व्यवहार में निर्लेपता लाने के विषय में संकेत करते हुए कहाः

"जिस प्रकार सरोवर के पानी में खिला हुआ कमल का फूल पानी में रहने पर भी पानी से नहीं भीगता उसी प्रकार संसार में रहो किन्तु संसार की मोह-माया का स्पर्श न होने दो। संत तुलसीदास जी ने भी कहा हैः

तुलसी जग में यूँ रहो ज्यों रसना मुख माँहीं।
खाती घी अरु तेल नित फिर भी चीकनी नाहीं।।

जिस प्रकार नित्य घी, तेल जैसे चिकने पदार्थ खाने पर भी जीभ चिकनी नहीं होती क्योंकि जीभ का अपना रस होता है, इसीलिए दूसरा कोई रस उससे चिपकता नहीं है, उसी प्रकार **मन को भी भगवदरस से रसमय कर दो तो वह जगत के मिथ्या रस से आकर्षित नहीं होगा"।**

संसार को एक धर्मशाला बताते हुए उन्होंने कहाः

"यह संसार एक धर्मशाला है। जिस प्रकार धर्मशाला में रहने से वहाँ के बर्तन, फर्नीचर, बिस्तर वगैरह मिल जाते हैं। उसका हम उपयोग तो कर लेते हैं किंतु उन्हें अपना नहीं मानते। उसी प्रकार संसार में रहो तब प्रारब्ध के अनुसार संसार की जो वस्तुएँ मिलें उनका उपयोग तो करो परंतु उन्हें अपनी मत मानो। ऐसा करने से मोह नहीं होगा।

संसार तेरा घर नहीं, दो चार दिन रहना यहाँ।
कर याद अपने राज्य की, स्वराज्य निष्कंटक जहाँ।।

जिस प्रकार नदी पार करने के लिए नाव में कई लोग बैठते हैं और किनारा आते ही उतर जाते हैं। कोई भी उस नाव को अपनी नहीं मानता, उसी में बैठा नहीं रहता। उसी प्रकार हम भी इस संसार में रहते हैं अतः सबके साथ हिलमिलकर रहते हुए भी अपने को एक यात्री ही मानना चाहिए।"

पूज्य स्वामीजी श्रद्धालुओं को अपने समय का सदुपयोग कैसे करना चाहिए इसका संकेत करते थे। जिन मौज-शौकों से जीवनशक्ति का ह्रास होता है, कुसंस्कार पनपते हैं और शरीर रोगी बनता है उन सबसे सावधान रहने के लिए कहते। आज कल खूब व्यापक हुए टी. वी. और सिनेमा की बुराइयों से लोगों को सावधान करते हुए पूज्य स्वामी जी ने कहाः

"सिनेमा नहीं देखने चाहिए। सिनेमा देखने से मन पर बहुत खराब प्रभाव पड़ता है। उससे हममें कई प्रकार के स्थूल एवं सूक्ष्म दुर्गुण आ जाते हैं। सिनेमा देखने से फैशन एवं शृंगार के साथ चरित्रहीनता की बुराइयाँ फैलती हैं। कई लोग आँख के रोगों एवं वीर्यपात जैसी शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं।"

दूसरे प्रसंग पर 'मन' के ऊपर सत्संग करते हुए पूज्य स्वामीजी ने कहाः

"मन पर तुम्हारा संयम हो और तुम सोच-विचारकर कार्य करो तो यह तुम्हारी आजादी है। परंतु तुम मन के दास हो जाओ और उसके कहने के अनुसार चलो तो यह मन के प्रति तुम्हारी गुलामी है। यहाँ विदेश में देखो, कितनी मनमुखता है ! उठने-बैठने, खाने-पीने, घूमने, खर्च करने में सब प्रकार की स्वतन्त्रता है। बेटे-बेटी, माता-पिता, सभी कमाते हैं। पता तक नहीं चलता कि वे कब घर में आते हैं और कब जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ या मन के अनुसार चलता है। ऐसी झूठी आजादी से कइयों का जीवन अस्तव्यस्त हो रहा है, चरित्र नष्ट हो रहा है, लोग अनेक रोगों के शिकार होते जा रहे हैं। टी.बी., कैन्सर, स्नायुरोग वगैरह पहले भारत में कहाँ थे? भारतवासियो को ये बीमारियाँ विदेश से ही मिली हैं। तमाकू, बीड़ी, सिगरेट, चाय, शराब जैसे व्यसनों की बुराइयाँ व्यापक मात्रा में फैल रही हैं। मारपीट, आग, चोरी-डकैती जैसी घटनाएँ बड़े शहरों में सामान्य बनती जा रही हैं। ऐसी कष्टदायक आजादी से क्या लाभ?"

पूज्य स्वामी जी ने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए थोड़ी सूचनाएँ देते हुए कहाः

"शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सात्विक, सादा एवं सुपाच्य आहार लेना चाहिए। भोजन शांत चित्त से, एकांत एवं पवित्र स्थान पर करना चाहिए। रोज कसरत करनी चाहिए। रोज सुबह-शाम नियमित प्राणायाम करने से मन प्रसन्न एवं शरीर फुरतीला रहता है। शरीर के स्वास्थ्य की सुरक्षा के साथ-साथ जिसने हमें मानव जन्म दिया है उस परम पिता परमात्मा का हमेशा स्मरण-चिंतन करना चाहिए। तुम्हारे जीवन पर योगासन, प्राणायाम एवं सात्विक आहार का सीधा असर पड़ता है।"

कोलालम्पूर से पूज्य स्वामी जी 20 जनवरी को मलायन रेलवे द्वारा पेनांग पहुँचे। वहाँ शहर से दूर श्री रामकृष्ण आश्रम में निवास किया। वहाँ काफी भक्तों को यौगिक क्रियाएँ एवं आसन सिखाये। वहाँ दो बार सत्संग किया जिसमें उन्होंने कहाः

"अंतःकरण में एकदम सच्चाई रखोगे एवं हृदय शुद्ध रखोगे तो तत्काल ज्ञान प्राप्त होगा। जो ज्ञानवान की सेवा करता है उसे ज्ञानवान के पुण्य मिलते हैं किंतु जो ज्ञानवान की निंदा करता है वह पाप का भागीदार बनता है। केवल ज्ञान सुनने अथवा सुनाने से या ज्ञान की बातें करने से ज्ञान नहीं होता। वास्तव में सच्चा ज्ञान तो सदगुरु के चरणों की निष्काम सेवा करने से ही मिलता है। जब शिष्य अपने गुरु की बिनशरती शरणागति स्वीकार कर लेता है, खुद अमानी बन जाता है, गुरु की इच्छा में अपनी इच्छा मिला देता है, तब ऐसे सतशिष्यों के लिए ज्ञान का मार्ग सुगम हो जाता है।"

दूसरी बार पूज्य स्वामी जी ने गृहस्थ धर्म के ऊपर सत्संग करते हुए कहाः

"गृहस्थियों को हमेशा माता-पिता, आचार्य एवं अतिथि को पूजनीय मानना चाहिए। उनकी सेवा करनी चाहिए। रोज सुबह भगवान का स्मरण करना चाहिए। जहाँ तक हो सके वहाँ तक बुरे संग एवं बुरे कर्मों से बचना चाहिए। सदैव भलाई के कर्म करते रहना चाहिए और झूठ कभी नहीं बोलना चाहिए। संसार को स्वप्नवत् मानना चाहिए। यह सब परमात्मा का खेल है, संसार गुलाब का फूल नहीं, वरन् काँटा है। अगर तुम भगवान को भूलकर स्वच्छंद होकर चलोगे अर्थात् बुरा संग, बुरे संकल्प एवं बुरे कर्म करोगे तो वे काँटे तुम्हें लगेंगे, तुम दुःखी होंगे। किन्तु मन, देह, इन्द्रियों का संयम करोगे और भगवान का स्मरण करोगे तो सच्चा आनंद प्राप्त करोगे।"

यहाँ पूज्य स्वामी ने एक सप्ताह रहकर अपनी ज्ञानवाणी द्वारा श्रोताओं को लाभान्वित किया।

पेनांग के बाद टीपंग में तीन दिन रहे। यहाँ सिक्ख लोगों के गुरुद्वारे में सत्संग का आयोजन किया गया। सत्संग की महिमा समझाते हुए पूज्य स्वामीजी ने कहाः

"मन को जीतने के लिए सत्संग की आवश्यकता है। सत्संग का शाब्दिक अर्थ होता हैः जिसके संग द्वारा सत् वस्तु की प्राप्ति हो। शास्त्रों में सत्संग की अपार महिमा कही गयी है। गुरु अर्जुनदेव ने कहा हैः

मेरे माधउ जी सत संगति मिले सु तरिआ।
गुरु परसादि परम पदु पाइआ सूके कासट हरिआ।।

'हे प्रियतम ! जिसको सत्संग मिल जाता है वह इस संसार-सागर को तैरकर पार हो जाता है। सूखा वृक्ष पानी मिलते ही हरा होने लगता है ऐसे ही गुरुप्रसाद मिलने पर परम पद की प्राप्ति हो जाती है।'

तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड में भी सत्संग की महिमा गाते हुए कहा गया हैः

बिन सत्संगु विवेक न होई।
रामकृपा बिन सुलभ न सोई।।

इस जीव की उन्नति सत्संग द्वारा ही होती है। सत्संग से ही जीव का स्वभाव बदलता है। सत्संग से मानो, जीव नया जन्म धारण कर लेता है। वह सात्विक एवं धार्मिक बन जाता है। कुसंग से जीव को हानि होती है। नीच व्यक्तियों के संग से नीच बना जाता है एवं उत्तम कोटि के महात्माओं के संग से श्रेष्ठ बना जाता है। **जिस प्रकार चींटी गुलाब के फूल का संग करके देवताओं के सिर पर चढ़ जाती है उसी प्रकार नीच एवं पापी मनुष्य भी महात्माओं का उत्तम संग प्राप्त करके ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।"**

पूज्य स्वामी जी ने आगे कहाः

"जिस मनुष्य ने अपने पिछले जन्मों में निष्काम कर्म किये होंगे उन्हीं लोगों को इस जन्म में आत्मा के साथ प्रीति होती है। ऐसे लोग ही नश्वर दुनिया के पदार्थों को तुच्छ समझते हैं। ऐसे वैराग्य से ही हृदय शुद्ध होता है एवं चित्त में शांति मिलती है। वैराग्यवान् शुद्ध चित्तवाले को सदगुरु उपदेश देकर जगाते हैं एवं जीव को शिवस्वरूप बना देते हैं।

शिवस्वरूप बनने के लिए ईश्वरकृपा, गुरुकृपा एवं आत्मकृपा की आवश्यकता है। ये तीन मिल जायें तो बेड़ा पार हो जाये। उपासना एवं निष्काम कर्म से अंतःकरण शुद्ध हो जाये तो ईश्वरकृपा होती है। सदगुरुदेव जो उपदेश करते हैं उसका आचरण करने से गुरुकृपा होती है और साधक इसके लिए प्रमादी हुए बिना इस मार्ग पर निरंतर चलने का पुरुषार्थ करेगा तो आत्मकृपा होगी।"

सिक्ख भाई-बहनों पर पूज्य स्वामी के सत्संग का खूब प्रभाव पड़ा। पूज्य स्वामी जी ने सत्संग के साथ उन लोगों को आसन एवं यौगिक क्रियाएँ भी सिखाईं।

पूज्य स्वामीजी टीपंग से थोड़े घण्टे अपाह होते हुए केमरान हायलेन्डस जो कि मलाया के पहाड़ों पर स्थित ठंडा क्षेत्र है, वहाँ पधारे। वह जगह समुद्रतल से 5000 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। वहाँ दो दिन रहकर कोलालम्पूर होते हुए, सेराम्बान में दो दिन रहकर पोर्ट डिस्कन में समुद्र तट पर एकांत स्थल पर आकर रहे। वहाँ भी पूज्य स्वामीजी सुबह-शाम भक्तों को ज्ञानामृत की प्यालियाँ पिलाते थे। स्वामीजी वहाँ से मलाका पधारे। यहाँ सिक्खों के गुरुद्वारे में तीन दिन रुके। भक्तों को सत्संग दिया। मलाका के बाद मआर होकर अकलोंग आये। यहाँ उन्होंने लोगों को स्वास्थ्य संबंधी मार्गदर्शन दिया एवं मानव जीवन के उद्देश्य पर सत्संग दिया।

पूज्य स्वामीजी ने कहाः "मनुष्य शरीर मिलना दुर्लभ है। यह मिला है तो सावधान रहकर आत्मज्ञान पाने के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए। फिर कब मनुष्य देह मिलेगा यह निश्चित नहीं है।

अबके बिछुड़े कब मिलेंगे, जाय पड़ेंगे दूर।

बड़े में बड़ा दुःख हैं जन्म-मृत्यु और बड़े में बड़ा सुख है मुक्ति। अतः मेरे प्यारों ! आज शुद्ध संकल्प करो कि इस जन्म में ही हम मुक्ति प्राप्त करेंगे। दैवी संपदा के गुणों को प्राप्त करने से मुक्ति मिलेगी एवं जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिलेगा। मनुष्य शरीर, जाति, वर्ण, आश्रम एवं धर्म वगैरह के साथ एकत्व करके उनका अभिमान करने लगता है। उन्हें अपने में मानने लगता है जिसके कारण स्वयं कई बंधनों में बँधकर राग-द्वेष करने लगता है। फलतः उसका मन अशुद्ध होने लगता है। अतः साधक को यह निश्चय एवं संकल्प करना चाहिए कि 'मैं शरीर नहीं हूँ। मुझे मनुष्य शरीर भगवान की कृपा से साधन के रूप में मिला है।' ऐसा निश्चय करके शरीर में सुख की भावना नहीं रखनी चाहिए। उसे अपना नहीं मानना चाहिए। ऐसी भावना से उसका देहाध्यास चला जायेगा।"

पूज्य स्वामीजी तीन सप्ताह तक यात्रा करके 8 फरवरी को वापस सिंगापुर पधारे। वहाँ वे रोज सुबह-शाम सत्संग करते। 12 फरवरी, रविवार को सुबह 11 से 12 बजे तक श्री रामकृष्ण आश्रम में सत्संग किया। श्रोताओं पर उसका हृदयस्पर्शी प्रभाव पड़ा। आश्रम के मुख्य संचालक स्वामी सिद्धान्तानंद पूज्य स्वामी जी के प्रवचनों से काफी प्रभावित हुए। उन्होंने उस दिन आये हुए भक्तों को सामूहिक भोजन भी करवाया। पूज्य स्वामीजी ने विनोद से परिपूर्ण किन्तु ज्ञानप्रधान एक छोटी सी वार्ता सुनाते हुए बताया कि भक्ति किसकी करनी चाहिए? उन्होंने कहाः

"एक प्रेमी भक्त भगवान शंकर की भक्ति करता था। एक दिन पूजा करते-करते उसने भगवान की मूर्ति पर एक चूहे को चलते देखा। यह देखकर उसके मन में विचार आयाः 'अरे ! भगवान शंकर से तो चूहा बड़ा है।' अतः वह चूहे का उपासक बन गया। थोड़े दिनों के बाद उसने देखा कि एक बिल्ली उस चूहे को खा गयी। अब वह बिल्ली को बड़ा मानने लगा। कुछ दिनों के बाद देखा कि एक कुत्ता उस बिल्ली के पीछे पड़ा है और बिल्ली जान बचाकर भाग खड़ी हुई। अब वह कुत्ते में श्रद्धा रखने लगा। फिर एक दिन उसने देखा कि उसकी पत्नी उस कुत्ते को डंडा मार रही थी, अतः वह अपनी पत्नी को कुत्ते से बड़ा मानकर पत्नी की पूजा करने लगा। एक दिन किसी कारणवशात् उसे अपनी पत्नी पर क्रोध आ गया और क्रोध करते वक्त उसने देखा कि पत्नी उसके क्रोध से सहम गई है। उसे विचार आ गया किः 'हाँ.... पत्नी से तो मैं स्वयं ही उत्तम हूँ।' अतः वह अपनी ही उपासना करने लगा। वह ऐसा समझने लगा किः 'सभी में स्वयं मैं ही हूँ।' अंत में शुद्ध संकल्प से उसे आत्मबोध होने लगा और वह अपने को ही सबका साक्षी, सच्चिदानंदस्वरूप समझने लगा। ऐसा करते-करते वह परम शांति को उपलब्ध हो गया।"

15 फरवरी को पूज्य स्वामीजी का आखिरी सत्संग सिंधी क्लब में हुआ। वह सत्संग हमेशा के लिए एक यादगार बन गया। उसमें पूज्य स्वामीजी ने समझायाः "सत्य क्या है? सत्य उसे कहते हैं जो तीनों कालों में - भूत, भविष्य एवं वर्त्तमान में स्थित हो। जो पहले था, अभी है और बाद में भी रहेगा वह सत्य। किसी का भी शरीर पहले नहीं था, अभी है और भविष्य में उसका नाश होने वाला है। प्रत्येक वस्तु रूप, रंग, आकार बदलती रहती है। यह शरीर जन्म लेने

के पूर्व न था। जन्म लेने के बाद वह बचपन, जवानी और वृद्धावस्था से गुजरता है। फिर मौत आती है... तो वह सत्य कैसे कहा जा सकता है? अविवेक एवं अज्ञानता के कारण ही हम इस शरीर को सत्य समझते हैं। जब हमें सत्यबुद्धि प्राप्त होगी, जब हमारी बुद्धि शुद्ध होगी तब हम शरीर को सत्य एवं प्रिय नहीं समझेंगे।

जिसको शरीर मिला है उसे कोई-न-कोई दुःख अवश्य है। हमेशा यह समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि मानव तन किसलिए मिला है? मनुष्य योनि गयी तो फिर पता नहीं, कौन सी योनि मिलेगी? इसीलिए संत-महापुरुष कहते हैं कि अभी से ही जीवन्मुक्ति के लिए प्रयत्न करो। इसके लिए भगवान की भक्ति करो, स्मरण करो, चिंतन करो, ध्यान करो। विवेक-बुद्धि का उपयोग करो कि जो दिखता है वह अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूपवाला है। नाम और रूप तो हमेशा बदलनेवाला है। असत् वस्तुओं पर से राग एवं ममता का त्याग करना है। भगवान का आश्रय लो। हमेशा सत्शास्त्रों एवं संतों का संग करो।"

जब 16 फरवरी की रात्रि को आठ बजे पूज्य स्वामीजी मुंबई के लिए हवाई जहाज में बैठे उस समय हवाई अड्डे पर सिंधी, गुजराती, सिक्ख, तमिल, चाइनीज वगैरह सभी लोग उनके दर्शन एवं विदाई के लिए एकत्रित हुए थे। उन लोगों ने जल्दी-जल्दी पुनः पधारने की प्रार्थना की एवं अश्रुभरी आँखों एवं भावभरे हृदय से पूज्य स्वामी जी को विदाई दी।

परदेश के लोगों के दिल की पुकार को सुनकर कृपालु पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज छः वर्षों के बाद 1969 में 9 फरवरी, रविवार के दिन पुनः सिंगापुर पधारे। काफी समय तक सिंगापुर एवं उसके आसपास के शहरों में घूमकर उन्होंने ज्ञान की अमृतधारा बरसायी। फिर से पूर्व एशियावासियों को आत्मरस का, अंतरात्मा के माधुर्य की झलक पाने का स्वर्णिम अवसर मिला। अनेकों नये भक्तजनों को इस अलबेले संत के दर्शन हुए, उनके श्री चरणों में पुष्प समर्पित करने का सौभाग्य मिला एवं उनका आशीर्वाद पाने का अनुपम अवसर मिला।

धन्य हैं ऐसे कलियुग के उन जीवों को जिन्हें ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों का सान्निध्य एवं आत्मज्ञान सुनने, विचारने एवं आत्मरस पाने की रूचि होती है। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने अपने प्रेमी भक्तों को कर्त्तव्य-पालन, सदाचार का महत्त्व, मानव जीवन की महत्ता, परमात्मा में प्रीति, सुखी जीवन जीने की कुंजी एवं आसन, प्राणायाम तथा यौगिक क्रियाओं का महत्त्व समझाया। उस समय अलग-अलग जाति के लोगों ने बड़ी संख्या में उपस्थित होकर पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के सान्निध्य का लाभ लिया।

इसके बाद पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने मुंबई के लिए प्रस्थान किया। वहाँ बड़ी संख्या में उपस्थित श्रद्धालु भक्तों ने उनका भावभीना स्वागत किया। अपने प्यारे गुरुवर के दर्शन करके उनका हृदय पुलकित एवं पावन हो गया।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज भारत आकर भी एक ही जगह स्थायी नहीं रहे, वरन् अलग-अलग जगहों पर जाकर लोक-उत्थान के सेवाकार्यों में जुड़ गये। भारत के कोने-कोने में

जाकर, जहाँ लोगों को धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक सहायता की जरूरत पड़ती वहाँ जाकर उन लोगों के लिए आशीर्वाददाता बन गये। जिज्ञासुओं एवं भक्तों को घर बैठे दर्शन-सत्संग का लाभ देते और स्वास्थ्य संबंधी मार्गदर्शन भी देते।

लोकलाड़ीले पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने भक्ति, योग एवं वेदान्ती जीवनदर्शन के गहन ज्ञान द्वारा एवं हृदयंगम सरल एवं सुबोध प्रवचन द्वारा परदेश के जनसमुदाय में श्रद्धा एवं आदर का उच्च स्थान पा लिया था। वे परम आदरणीय एवं परम पूजनीय बन गये थे। पूर्व एशिया के लोग पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के रंग में इतने रंग गये थे कि उनके दर्शन एवं अमृतवाणी की प्यास एवं तड़प दिनों दिन बढ़ती जा रही थी। अतः उन लोगों ने पुनः पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को तीसरी बार पधारने के लिए भावभीना आमंत्रण दिया।

'श्रीरामचरितमानस' के उत्तरकांड में कागभुशुंडजी गरुडजी से कहते हैं-

संत सहहि दुःख परहित लागी....

संत पुरुष हमेशा दूसरों के कल्याण के लिए स्वयं दुःख सहते हैं। सभी के परम हितैषी, परम कृपालु पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज भी अपनी उम्र एवं शरीर की परवाह किये बिना उन लोगों के प्रेम एवं अंतरी पुकार सुनकर 28 सितंबर 1972 में पूर्व एशिया की यात्रा के लिए तैयार हुए। उस यात्रा के दौरान जो शिष्य उनके साथ थे, उनकी ही भाषा में-

"28 सितंबर 1972 को पूज्य स्वामीजी हाँगकाँग पधारे। हवाई अड्डे पर असंख्य प्रेमी भक्त हाथ में सुगंधित फूल हार एवं गुलदस्ते लेकर आये।

पूज्य स्वामी जो को देखकर उनका हृदय खुशी से नाच उठा एवं उनके दर्शन से उनकी आँखें तृप्त हो गयीं। एशियाई धनपतियों में सबसे अग्रणी ज्योर्ज हरिलीला हाँगकाँग में पूज्य स्वामीजी के पावनकारी, जीवन-उद्धारक सत्संग के आयोजन के पुण्यकार्य में भागीदार हुए। काफी समय से हरिलीला के कुटुंबीजन पूज्य स्वामीजी से प्रार्थना कर रहे थे कि हाँगकाँग पधारकर हमारे ऊपर कृपादृष्टि डालकर हमें पावन करो। पूज्य स्वामी जी ने भी थोड़े वर्ष पूर्व उन लोगों को वचन दिया था कि 'जरूर आऊँगा।'

हरिलीला एवं कुटुंबीजनों ने खूब श्रद्धा एवं भक्तिभाव से पूज्य स्वामी जी को अपने घर में ही रखने के लिए सुंदर व्यवस्था करके सेवा का सुनहरा अवसर पा लिया। पूज्य स्वामीजी ने हाँगकाँग में अलग-अलग जगहों पर बुद्धि की दिव्यता, मन की प्रसन्नता एवं शरीर की स्वस्थता बढ़ाने के प्रयोग बताए। भोग-विलास में पैसों का दुर्व्यय न करने की चेतावनी दी और उसका सदुपयोग करने का मार्गदर्शन दिया। बीड़ी, सिगरेट, दारू, पान, चाय एवं कॉफी जैसे पदार्थों का सेवन करने से कितना नुकसान होता है यह समझाया। उन्होंने कहाः

"तमाकू से फेफड़े, मुँह एवं गले में कैंसर, हृदयाघात, पेट के रोग एवं अंधापन जैसे भयंकर रोग होने की संभावना रहती है। चाय-कॉफी पीने से पाचनशक्ति मंद होती है, दिमाग के तंतु कमजोर होने लगते हैं, वीर्य पतला होने लगता है, मधुमेह, अनिद्रा एवं शीघ्र वृद्धत्व जैसे रोग

होने लगते हैं। दारू जैसे मादक पदार्थों से मूर्खता, पागलपन, लकवा एवं क्षय (टी.बी.) जैसे जानलेवा रोग घर करते हैं। दारू पीने वाले की दस पीढ़ियाँ बरबाद हो जाती हैं।"

आजकल के ठंडे पेय कोका कोला एवं पेप्सीकोला में कार्बन डायआक्साइड गैस होती है जो कि स्वास्थ्य के लिए खूब हानिकारक है।

नशेवाली चीजों के सेवन से जीवनशक्ति का जो ह्रास होता है उसके विषय में बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से समझाते हुए पूज्य स्वामीजी ने लोगों को नशे से मुक्त करने का एक जबरदस्त अभियान चलाया जिससे लोग खूब प्रभावित हुए।

हाँगकाँग में उन्होंने कॉवलून के हिन्दू मंदिर, हेप्पी वेली के हिन्दू मंदिर, राधा-कृष्ण एंडकवाला के घर एवं हरिलीला के घर सत्संग दिया था।

हरिलीला के घर पर रोज सुबह 8 से 10 बजे तक सत्संग होता था जिसका लाभ अनेकों भक्तों ने लिया। ये सत्संग वहाँ के समाचारपत्रों, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन द्वारा प्रसारित किये गये। एक दिन पूज्य स्वामीजी ने बच्चों का लालन-पालन किस प्रकार करना चाहिए एवं उन्हें कैसे संस्कार देने चाहिए इस विषय पर सत्संग देते हुए कहाः

"माता-पिता को सूक्ष्म दृष्टि रखकर बचपन से ही बच्चों के रहन-सहन, आहार, शिष्टाचार, पढ़ाई एवं सदाचार के ऊपर ध्यान देना चाहिए। बच्चों को स्वच्छता सिखानी चाहिए। बच्चों में रोज जल्दी उठने की आदत डालनी चाहिए। ब्रह्ममुहूर्त में उठने से आयु, बल एवं बुद्धि बढ़ती है। बचपन से ही चबा-चबाकर खाना सिखाना चाहिए। दैवी संपदा के गुण सिखाने चाहिए। माता-पिता को किसी भी समय बच्चों के सामने खराब शब्द नहीं बोलने चाहिए, झगड़ा नहीं करना चाहिए। बच्चों को कभी डराना नहीं चाहिए। उन्हें रोज प्रार्थना करना सिखाना चाहिए। बच्चों के आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। तामसी एवं रजोगुणी आहार जैसे कि लाल मिर्च, चटनी, कुल्फी, गोल-गप्पे जैसी चीजें नहीं खिलाने चाहिए। अच्छी-अच्छी, धार्मिक, नैतिक, सदाचारयुक्त एवं शूरवीरता के विचारोंवाली कथाएँ कहनी चाहिए।"

पूज्य स्वामी जी ने 14 अक्तूबर के दिन शाम को यौगिक एवं हठयोग की क्रियाएँ बतायीं जिसका लाभ दूरदर्शन पर 40 लाख हाँगकाँगवासियों ने लिया।

पूज्य स्वामीजी सत्संग के दौरान कहते किः

"धन कमाना जरूरी है किंतु सच्चाई से कमाना चाहिए। धंधे में वस्तु के तौल-माप में भी सावधानी एवं प्रामाणिकता रखनी चाहिए। अनीति की कमाई नहीं करनी चाहिए। इससे बरबादी ही होती है। गृहस्थियों के हृदय में कभी-भी किसी के लिए द्वेष, कपट अथवा ठगने की भावना नहीं होनी चाहिए। व्यापार में लाभ लेने की मनाही नहीं है लेकिन जब कोई ग्राहक आये तो समझना चाहिए कि उसके रूप में स्वयं भगवान आये हैं। उसके साथ छल-कपट होगा तो वह भगवान के साथ छल कपट किया गया माना जायेगा। केवल मुँह से रामनाम लेने से क्या लाभ? वाणी एवं कर्म में सच्चाई होनी चाहिए। पहले के जमाने में भी गृहस्थी लोग खाते-पीते एवं

खटास-मिठास का अनुभव करते थे, परंतु वे अपना जीवन बड़ी सादगी से जीते थे। मन एवं इन्द्रियों को वश में रखते थे। शास्त्र एवं ईश्वर की आज्ञा के अनुसार शांतिमय, स्नेहमय जीवन जीते थे। हमें भी सादगीयुक्त, साहसी एवं स्नेही होना चाहिए।"

इस प्रकार स्वामीजी गृहस्थियों को शुभ कर्म में रत रहने का उपदेश देते थे। यदि कोई वैराग्य-संपन्न होता एवं ज्ञान का अधिकारी होता तो उसे वेदान्त के साधन-चतुष्ट्य बताकर वेदान्त के प्रक्रिया ग्रंथ समझाते थे। जो ज्ञान के अधिक अधिकारी होते उन्हें पंचदशी, उपदेशसहस्री, विचारसागर, जैसे ग्रंथों का श्रवण करवाते। साथ ही साथ गीता एवं उपनिषद भी समझाते। जिन्हें निष्ठा की जरूरत थी उन्हें जीवन्मुक्तिविवेक एवं पातंजल योगदर्शन पढ़ाते। उनके लिए कोई जातिभेद नहीं था किन्तु सच्चे विरक्त जिज्ञासु पर उनकी करुणादृष्टि बनी रहती थी। सुबह अथवा शाम को जब पहाड़ों पर घूमने जाते तब मार्ग में चलते-चलते जिज्ञासुओं को ब्रह्म-उपदेश देते।

15 अक्तूबर, रविवार की शाम को हाँगकाँग के भक्तों के रुकने के अत्यंत आग्रह के बावजूद पूज्य स्वामीजी जापान जाने के लिए हवाई जहाज में बैठे एवं शाम को ओसाका पधारे। वहाँ 17 अक्तूबर को सिंधी क्लब में रात्रि के 8 से 10 बजे तक सत्संग का आयोजन रखा गया जिसका लाभ असंख्य श्रद्धालुओं ने लिया। वहाँ से 18 अक्तूबर को निकलकर टोकियो, योकोहामा में पधारकर दो दिन सत्संग किया। पूज्य स्वामीजी की अमृतवाणी को यहाँ के हिन्दुओं ने खूब प्रेम एवं श्रद्धा से सुना। पूज्य स्वामीजी ने कहाः

"कोई भी महान् व्यक्ति आकाश में से नहीं आता वरन् उसके जीवन पर संत-महापुरुषों के संग एवं सत्शास्त्रों के अभ्यास का बहुत प्रभाव होता है। दुनिया के जितने भी महान् व्यक्ति हुए है वे सब सत्शास्त्रों एवं सत्पुरुषों के संग से ही उन्नत हुए हैं। लखनऊ में जब मैं एक सभा में गया था तब पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बताया था कि सुंदर पुस्तकें पढ़कर एवं महात्मा गाँधी का संग करके मैंने बहुत पाया है।"

दूसरे दिन पूज्य स्वामी जी ने कलियुग में श्रोताओं पर सत्संग का कैसा असर होता है इसके संदर्भ में संक्षेप में रसप्रद बाते करते हुए कहाः

"सत्संग की महिमा अपार है। जब सत्संग सुनने बैठो तब वृत्तियों पर निगरानी रखनी चाहिए, नहीं तो सत्संग सुनने से क्या लाभ मिलेगा? कलियुग ने कहा है किः 'मैं जब भी सत्संग में जाता हूँ तब अपने साथ तीन प्रकार की गोलियाँ ले जाता हूँ। सत्संग में पहले लाल गोली फेंकता हूँ जिससे सत्संग सुनते-सुनते लोगों को नींद आने लगे। किन्तु उपदेशक (वक्ता) भगवन्नाम का उच्चारण करवाकर सत्संगियों को सावधान करता है। तब मैं दूसरी पीली गोली फेंकता हूँ जिसके प्रभाव से लोग बैठे-बैठे ही इधर-उधर ताक-झाँक करने लगते हैं और असावधान हो जाते हैं किन्तु उपदेशक धुन या कीर्तन करवाकर लोगों को सावधान कर दे तो फिर मैं तीसरी सफेद गोली फेंकता हूँ जिसके प्रभाव से सत्संगी थोड़े सावधान तो रहते हैं फिर भी उनकी

चित्तवृत्ति घर-कुटुंब या दूसरी बाह्य प्रवृत्तियों में बहिर्मुख हो जाती है। वे प्रतीक्षा करते हैं कि महाराज कब सत्संग पूरा करेंगे? जिनके ऊपर मेरी इन गोलियों का प्रभाव नहीं पड़ता वे तो मेरे भी गुरु हैं, देवतास्वरूप हैं।'

कलियुग की इन बातों को ध्यान में रखकर हमेशा तन एवं मन से सावधान होकर सत्संग सुनने बैठना चाहिए। कलियुग की गोलियों का शिकार नहीं होना चाहिए।"

20 अक्तूबर को पूज्य स्वामी जी मनीला पधारे। वहाँ एक सप्ताह रुककर उन्होंने यौगिक क्रियाओं, आसनों एवं स्वास्थ्य संबंधी मार्गदर्शन दिया एवं ब्रह्मचर्य-पालन के नियम बताते हुए कहाः

"ब्रह्मचर्य का आधार तन की अपेक्षा मन पर ज्यादा है। अतः अपने मन को नियंत्रण में रखो एवं आदर्श उच्च रखो। ऋषि-मुनियों का कहना है कि ब्रह्मचर्य ब्रह्मदर्शन का द्वार है। उसकी रक्षा करना अत्यंत आवश्यक है। वीर्य की एक बूँद रक्त की तीस बूँदों से बनती है। 'जैसा अन्न वैसा मन' यह कहावत बिल्कुल सच्ची है। गरम मसाले, चटनी, मांस-मछली-अण्डे, चाय-कॉफी जैसे पदार्थों से दूर रहो। भोजन हल्का एवं स्निग्ध लेना चाहिए। वेशभूषा का भी तन-मन पर प्रभाव पड़ता है। सादे, साफ एवं सूती खादी के वस्त्र पहनो। 'योगदर्शन' में लिखा हैः

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायाँ वीर्यलाभः।

वीर्य की रक्षा करने से बल एवं तेज बढ़ता है। शरीर में वीर्य ही एक ऐसा तत्त्व है जिसके प्रभाव से मनुष्य जो चाहे पा सकता है। भीष्म पितामह के ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव था कि स्वयं श्रीकृष्ण भगवान को भी रणभूमि में हथियार न उठाने की प्रतिज्ञा के बावजूद उनके समक्ष हथियार उठाने पड़े।

कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर में जितना वीर्य होता है उतनी ही शक्ति एवं आत्मबल बढ़ता है। ऐसा कहा जाता है कि संसार का सारा आधार वीर्य पर ही है। अतः जिन्हें अपना उद्धार करना हो उन्हें वीर्य की रक्षा करनी ही चाहिए।"

मनीला के भक्त पूज्य स्वामीजी के सत्संग एवं यौगिक क्रियाओं से खूब लाभान्वित हुए। उसके बाद पूज्य स्वामीजी दो दिन बेंगकोक एवं दो दिन कोलालम्पूर (मलेशिया) रुके एवं सिंगापुर में भक्तों के अत्यंत आग्रहवशात् एक सप्ताह ज्यादा रुककर वहाँ के भक्तों को दर्शन-सत्संग का पुनः लाभ दिया।

सिंगापुर से निकलकर एक सप्ताह इण्डोनेशिया पधारे। वहाँ उन्होंने अपने सत्संग में नारियों को संबोधित करते हुए कहाः

"माताओ ! तुम तो देवियाँ हो। घर की रानियाँ हो। घर बनाना एवं घर की गाड़ी को सुचारू रूप से चलाना यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। अच्छे कर्म करो जिससे शुभ संकल्प हों और शुभ संकल्पों से तुम सुखी होओगी। सिनेमा देखना बिल्कुल बंद कर दो। सिनेमा देखने से विचार एवं संकल्प दूषित होते हैं। उसकी जगह भगवान से प्रार्थना करो कि सबका भला करें।"

तुम समझती हो कि 'हम सुंदर हैं।' परन्तु सुंदर क्या है? जिस शरीर को तुम सुंदर समझती हो वह शरीर मृत्यु के बाद सुंदर क्यों नहीं लगता? क्यों उसे जला दिया जाता है? जिस शरीर को सुंदर समझती हो, मन ही मन उसकी चमड़ी उतारकर देखो कि अंदर क्या है? अंदर तो हाड़-मांस, खून एवं रोगों का मंदा कचरा है। सच्चा सौन्दर्य तो सच्चे कर्म ही हैं।

घर को स्वर्ग बनाना हो तो सास को चाहिए कि वह अपनी बहू को अपनी पुत्री जैसा समझे और पुत्री की तरह ही प्रेमयुक्त व्यवहार करें। बहुओं को भी चाहिए कि वे अपनी सास को अपनी माता समझकर प्यार एवं आदर से सेवा करें। ऐसी समझ रखने से घर में सुख एवं शांति रहेगी। फिर भी तुम्हें कहता हूँ कि रोज सुबह उठते समय एवं रात्रि को सोते समय भगवान से प्रार्थना अवश्य करो कि 'हे प्रभु ! हमें सदबुद्धि दो एवं सबका भला करो। इसी में तुम्हारी भलाई है।"

बहनों एवं माताओं पर इस सत्संग का बड़ा गहरा असर पड़ा।

इण्डोनेशिया से पूज्य स्वामीजी दो दिन कोलंबो (सिलोन) पधारे। यहाँ स्वास्थ्य संबंधी मार्गदर्शन देने के पश्चात् जीवन जीने की कला के ऊपर सत्संग करते हुए पूज्य स्वामीजी ने कहाः

"सच्चा वीर कौन है? सच्चा वीर तो वही है जो अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। जो कायर होकर, वन में कंदमूल खाकर अपना जीवन बिताता है उसे कौन वीर कहेगा? वीर तो वह है जो अपना भला करे एवं दूसरों का भी भला करे।

काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार - ये पाँच मनुष्य के घोर शत्रु हैं। उनसे बचने का सरल उपाय है मन को वश करना। किन्तु मन को वश कैसे किया जाये? इन्द्रियों को वश में करने से मन मुर्दा हो जायेगा। उदाहरणार्थः तुम स्त्री को देखते हो। मन में स्त्री के प्रति राग होने से बार-बार उसे देखने की चेष्टा करते हो। उस समय तुम एकदम शांत हो जाओ और मन को आदेश दो कि एक क्या, दस स्त्रियों की तरफ देख। उसके बाद आँखें नीची कर लो। परिणाम क्या आयेगा? मन का कुछ चलेगा? मन मुर्दा हो जायेगा।

कष्टों के समय धैर्य धारण करने से महानता प्राप्त होती है। दुःख में धैर्य एवं सुख में समता रखने से अंतःकरण में खूब शांति रहती है। सागर की तरह गंभीर बनकर रहना चाहिए। सबके साथ प्यार एवं मधुरता से व्यवहार करना चाहिए। अपने बोलने से मित्र प्रसन्न हुआ तो क्या बड़ी बात है? जब शत्रु भी तुम्हारे बोलने से प्रसन्न हो जाये तभी वास्तविक महानता कही जाती है। प्रयत्नपूर्वक नम्र एवं अभिमानरहित होकर, अमानी होकर सबके साथ व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करने से परमात्मा की कृपा से धीरे-धीरे तुम अपने ब्रह्मस्वभाव को, अपनी अमर आत्मा को जानने में सफल हो जाओगे। ॐ आनन्द.... ॐ आनन्द... ॐ आनन्द..."

प्रत्येक सत्संग की समाप्ति के बाद पूज्य स्वामीजी श्रोताओं से अपनी मनपसंद सुंदर प्रार्थना करवातेः

"हे भगवान ! हमें सदबुद्धि दो, शक्ति दो, नीरोगता दो। हम अपना कर्त्तव्य पालें और सुखी रहें।"

इस प्रकार पूज्य स्वामीजी की विदेशयात्रा के दौरान् वहाँ के श्रद्धालु भाई-बहनों को एक ऐसा अनुपम अवसर मिला जिससे उन्हें यादशक्ति बढ़ाने का, शरीर को स्वस्थ रखने का, मन में माधुर्य, बुद्धि में ओज एवं तेज भर दें ऐसी यौगिक युक्तियाँ, एकाग्रता बढ़ाने के प्रयोगों का ज्ञान मिला एवं सिंह के समान बल भर दे ऐसी स्वामी जी की आध्यात्मिक अनुभूति से संपन्न, ओजमयी वाणी का लाभ मिला। पूज्य स्वामीजी जहाँ-जहाँ प्रस्थान करते, वहाँ-वहाँ उनकी उपस्थिति मात्र से समग्र वातावरण पवित्र हो जाता था, चारों तरफ चित्त की शांति एवं मन की प्रसन्नता छा जाती थी, संकल्प-विकल्पों की शृंखला नष्ट हो जाती थी एवं समस्त वातावरण मंगलमय, आनंदमय एवं वैकुण्ठमय हो जाता था।

कोलंबो में श्रद्धालुओं को सत्संग-गंगा में अवगाहन करवाने के बाद जब पूज्य स्वामी जी भारत पधारने के लिए विमान में बैठे तब हजारों प्रेमी, श्रद्धालु भक्तजनों ने उन्हें अश्रुभीनी आँखों से एवं भावविभोर हृदय से विदाई दी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अंतिम यात्रा

पूज्य श्रीलीलाशाहजी महाराज ने अपने कार्यक्षेत्र में कभी भी भौगोलिक सीमाओं की ओर नहीं देखा। उन्होंने तो जातिभेद से पार होकर, मानव जीवन का मूल्य समझाने तथा तन की तंदुरुस्ती सुधारने के लिए, बीमारों को रोगमुक्त करने के लिए एवं आध्यात्मिक मार्ग की शिक्षा देकर जीवन जीने की कला सिखाने के लिए आजीवन अथक प्रयास किये थे। तीसरी विदेशयात्रा के पश्चात् वे पुनः भारत में जनसेवा के कार्यों में निमग्न हो गये।

93 वर्ष की उम्र में भी वे कर्मशील रहे। इस उम्र में भी अपने सब काम स्वयं ही करते थे। योगासन एवं यौगिक क्रियाएँ भी नियमित रूप से करते थे। सुबह-शाम पैदल घूमने जाते थे। उनका पावन शरीर 93 वर्ष की उम्र में भी फुरतीला था। वास्तव में देखा जाये तो इन्द्रिय-संयम ही उनके फुरतीले शरीर एवं उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य था इस उम्र में भी उनके सारे दाँत मजबूत थे।

विदेश की तीसरी यात्रा ने पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को शारीरिक तौर पर काफी थका दिया था। उनकी आँतें एवं शरीर कमजोर हो गया था। इसलिए थोड़े समय तक वे आदिपुर के आश्रम में जाकर रहे। वहाँ थोड़ा आराम एवं यौगिक क्रियाएँ करके शरीर को पुनः लोककल्याण के कार्यों में प्रवृत्त होने के योग्य बनाया। शारीरिक दुर्बलता होने के बावजूद जनसेवा की उच्च

भावना एवं मजबूत आत्मबल के कारण उनकी शारीरिक अवस्था का किसी को भी पता न चल पाया। लोग कभी ज्यादा हैरान करते और काफी समय तक उन्हें कार्यरत रखते तब न चाहते हुए भी उन्हें कहना पड़ताः

"बाबा ! इस शरीर के अब आराम दो।"

इस अवस्था में पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज खूब कम बोलते। रोज सुबह जल्दी उठकर आसन एवं तेल मालिश करके दूर-दूर तक जंगलों में जाकर आत्ममस्ती में लीन हो जाते। ऐसी कमजोर हालत में भी लोकहित की भावना के कारण उन्होंने पुनः देशाटन शुरु कर दिया।

29 दिसम्बर 1972 में पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज पुनः आदिपुर पहुँचे। वहाँ से 5 जनवरी को जूनागढ़ पधारे। जूनागढ़ के बाद वेरावल एवं फिर पालनपुर होते हुए नंदभई पधारे। वहाँ थोड़े दिन रुककर उपलेटा पधारे। उपलेटा से लोककल्याण के कार्य करते हुए जयपुर पधारे। वहाँ थोड़े दिन रहकर खेड़थल, मथुरा वगैरह होते हुए गर्मी के कारण नैनिताल गये। वहाँ कुछ समय तक आराम किया किन्तु श्रद्धालुओं का आना-जाना तो लगा ही रहता था।

जुलाई 1973 में बारिश के दिन शुरु हुए अतः नैनिताल से वे हरिद्वार आये। लखनऊ के प्रेमी भक्तों के आमंत्रण को स्वीकार करके लखनऊ पधारे। वहाँ कुछ दिन तक लोगों को अपनी ज्ञानवर्षा से पावन किया। पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज की वाणी का एक-एक शब्द एक-एक अनमोल मोती की तरह था। उनकी वाणी हताश भक्तों में हिम्मत भरनेवाली, राहभूले को सच्ची राह दिखाने वाली और जीवनरस का सिंचन करने वाली थी। उसमें कभी कर्त्तव्य-पथ की पगडंडी का मार्गदर्शन तो कभी जीव-ब्रह्म की एकता का ज्ञान तो कभी-कभी प्रभु के प्रेमविरह में तन एवं मन का भान भुला देने का दिव्य सामर्थ्य था। उनके सान्निध्य में सभी का सर्वांगीण विकास हुए बिना नहीं रहता था। लखनऊ में काफी समय के अंतराल के बाद पधारने के कारण उनको ज्यादा दिन रखने के लिए लोगों की माँग थी, किन्तु 23 जुलाई से कानपुर में अखिल भारतीय ब्रह्मक्षत्रिय सम्मेलन होने के कारण वे ज्यादा नहीं रुके एवं कानपुर के लिए उन्होंने प्रस्थान किया।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को पता था कि अब जिंदगी के अंतिम दिन नजदीक आ गये हैं। अतः उस सम्मेलन में वे एक ही बात की ओर बारंबार इशारा करते रहे किः

"यह शरीर रहे न रहे किन्तु तुम लोगों ने विद्यादान फंड जिस उद्देश्य से एकत्रित किया है उसी में ही उसका सदुपयोग करना एवं इस कार्य को आगे बढ़ाते रहना।"

सम्मेलन के पश्चात् पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज पुनः आराम के लिए आबू के पहाड़ों पर गये। वहाँ थोड़े समय तक आराम करके फिर नंदभई पधारे। अब तो जहाँ-जहाँ उन्होंने धर्मशालाएँ, कुटियाएँ, स्कूलें, आश्रम वगैरह बनवाये थे, वहाँ-वहाँ के ट्रस्ट रजिस्टर्ड करवाते गये।

22 दिसम्बर 1973 में नंदभई से आग्रा एवं वहाँ से सौराष्ट्र पधारे। जब वे अजमेर से गुजरे तब स्टेशन पर असंख्य भक्त उनके दर्शन के लिए आये थे। उन लोगों को दर्शन-सत्संग देकर 'हरि ॐ तत् सत्' जप करवाया था।

जूनागढ़ पहुँचन के बाद पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज सोमनाथ एवं अन्य अनेक शहरों में पधारे थे। फिर जूनागढ़ आकर वहाँ 'अखिल भारतीय लोअर सिंधी पंचायत सम्मेलन' का उदघाटन किया। सम्मेलन के बाद वे पालनपुर पधारे। पालनपुर से 23 अक्तूबर को जेतपुर पधारे। जेतपुर से सिद्धपुर होते हुए वहाँ सिंधी धर्मशाला की नींव डालकर पुनः पालनपुर पधारे। 25 अक्तूबर को पालनपुर से कार द्वारा आदिपुर में टहलराम टेकचंद की बरसी में उदघाटन के लिए पधारे। वहाँ शरीर ठीक न होने की वजह से आधा मिनट ही सत्संग किया। उस रात्रि को पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के शरीर में काफी तकलीफें थीं। शरीर की अस्वस्थता के कारण बरसी में विघ्न न आये इसलिए वे 31 अक्तूबर को कार द्वारा पालनपुर पधार गये। पालनपुर में दूसरे दिन तबीयत कुछ ठीक लगी। हमेशा की तरह वे जंगल में घूमने भी गये।

परंतु....

यह संसार हर पल नाश की तरफ ही जा रहा है। मृत्यु से किसकी देह बच पायी है? जिस शरीर ने पंचमहाभूतों से जन्म लिया है उसे जल्दी या देरी से उन पंचमहाभूतों में वापस मिलने जाना ही पड़ता है। गुरु तेगबहादुरजी ने भी फरमाया हैः

पांच तत को तनु रचिओ, जानहु चतुर सुजान।
जिह ते उपजिओ नानका लीन ताहि मै मानु।।

यह शरीर पाँच तत्त्व - पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश से उत्पन्न हुआ है और उसी में पुनः लीन हो जाने वाला है। संसार में जो भी शरीर उत्पन्न हुआ है उसका नाश अवश्यंभावी है परंतु आत्मा तो अमर है।

श्रीमद भगवदगीता में भी कहा गया हैः

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

'यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।'

(गीताः 2.20)

यह हकीकत जिस प्रकार सामान्य जीवों के लिए लागू पड़ती है उसी प्रकार संतो, महात्माओं, सिद्ध पुरुषों एवं अवतारी पुरुषों को भी लागू पड़ती है। संतों की देह को भी प्रकृति का नियम लागू पड़ता ही है। उनकी देह को भी प्रारब्ध भुगतना पड़ता है।

पूज्य श्रीलीलाशाहजी महाराज का स्वास्थ्य 2 एवं 3 नवम्बर तक ठीक था। उस समय उनके सबसे निकट के एवं लाडले, प्रिय सतशिष्य परम पूज्य श्री आसाराम जी बापू उनके साथ ही थे। उन्होंने पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज की अंतिम यात्रा का वर्णन करते हुए कहा हैः

"3 नवम्बर 1973 की रात्रि को मेरे परम पूज्य सदगुरुदेव का स्वास्थ्य बिगड़ा। पूज्य श्री ने मुझे एवं वीरभान को बुलाया। उस समय उनका स्वास्थ्य ज्यादा बिगड़ा हुआ दिखाई दिया। उन्होंने कहाः

"अब जाने वाले हैं।"

उन्होंने प्रेमी भक्तों को आश्वासन दिया। रात्रि के तीन बजे उनका श्वास तेजी से चलने लगा। डॉक्टर को बुलाया। एक शब्द बोलना भी मुश्किल लगता था। उन्होंने डॉक्टर से कहाः

"अब कुछ नहीं सुधरेगा।"

फिर मुझे इशारे से गुरुदेव ने कहाः "इसको (डॉक्टर को) एक मीठा सेवफल दे।"

डॉक्टर ने जाते समय कहाः "अब स्वास्थ्य धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा।"

परन्तु दर्द बढ़ता ही गया। साढ़े चार बजे हमने दूसरे डॉक्टरों को बुलाने की आज्ञा माँगी। पूज्य श्री गुरुदेव ने कहाः

"देह को छोड़ो। यह भले अपना प्रारब्ध भुगते।"

फिर हमारी नम्र प्रार्थना सुनकर 'हाँ' कह दिया। हमने डॉक्टरों को बुलाने की व्यवस्था की। किन्तु तरतीव्र प्रारब्ध को कौन टाल सकता है? हम रात के 12 से सुबह के सात बजे तक जगे। दया के सागर स्वामी जी ने हमसे कहाः

"एक-एक करके बारी-बारी से तुम दोनों स्नान करके वापस आ जाओ।"

मैं तो चार-पाँच मिनट में ही स्नान करके तुरंत वापस आ गया। मैंने आकर पूर्व दिशा का दरवाजा खोला और पूज्य श्री से कहाः

"रवि महाराज का उदय हुआ है।"

पूज्य श्री को सूर्य की सुबह की सुनहरी किरणों से अपार प्रेम था। 4 तारीख को सुबह 7.20 के समय स्वामी जी ने खुश होकर सूर्यनारायण को आखिरी प्रणाम किये।

पाटण वगैरह से डॉक्टर आ गये। उन लोगों ने अपने अपने प्रयत्न शुरु किये। परंतु इस मिथ्या संसार में ऐसा कोई नहीं जन्मा जिसका पंचभौतिक शरीर हमेशा के लिए रहा हो। डॉक्टरों के प्रयत्न सफल नहीं हुए।

अंतिम समय में पूज्य श्री ने एक अलौकिक दृष्टि से सबकी ओर देखा। उसमें भी संसार के प्रति उनकी कृपा, कल्याण की भावना दृष्टिगोचर हो रही थी। करुणा से भरी वे आँखें प्रेम एवं परोपकार का पैगाम दे रही थीं।

मेरे गुरुदेव का दिव्य वपु इस पृथ्वी पर से विदा ले रहा था। तब मेरी गोद में ही सिर रखकर उन्होंने आखिरी श्वास लिए थे। मानो, उनकी आँखें कह रही थीं-

"ले... ले.... सभी कुछ ले ले....।"

आँखें बंद होने से पूर्व वे आँखें बहुत बरसी थीं। उस समय भी वे मुझे कुछ-न-कुछ सिखा रहे थे किः

"देख, यह सब शरीर को हो रहा है। मुझे नहीं होता। यह तो प्रारब्ध है... देख, 93 वर्ष का मेरा सपना पूरा होने को आया है... मैं नहीं मरता। देख बेटा ! सपना पूरा हो गया। खेल पूरा हो गया। अब मैं जाता हूँ। देख, लीलाशाह बापू नहीं मरते हैं, उसी प्रकार तुम भी नहीं मरते हो।"

उनकी मृत्यु भी उनके जीवन जितनी ही भव्य थी। आत्मध्यान में मग्न रहकर 4 नवम्बर, 1973 में रविवार के दिन सुबह 8.40 बजे, ठीक 93 वर्ष एवं साढ़े सात महीने पूरे करके पूज्य श्री ब्रह्मलीन हो गये। उनकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

बृहदारण्यक उपनिषद् में आता हैः

न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति।

'उन ब्रह्मवेत्ता के प्राण उत्क्रमण नहीं करते। वे ब्रह्म होने से ब्रह्म में ही लीन होते हैं।'

उनके देहांत के दुःखद समाचार सभी जगह फैल गये। उनके अंतिम दर्शन के लिए अलग-अलग जगहों से हजारों की संख्या में भाविक भक्त आये। सभी चाहक गहरे शोक में डूब गये। कष्ट की परवाह किये बिना रामधुन गाते-गाते वे लोग पालनपुर से डीसा होकर आदिपुर में उनकी समाधि के अंतिम क्षण तक उपस्थित रहे। अपने प्यारे गुरु महाराज के विरह में श्रद्धालु भक्त, प्रेमी चाहक एवं शिष्यों की आँखों से अश्रुधारा बरस रही थी किन्तु गुरुदेव की आत्मा मानो उन्हें पुकारकर आश्वासन दे रही थी किः

करे कूचु विया, सभेइ संसार मू।
पीर पैगम्बर ओलिया जिन पंहिजा पंथ कया।।
ग्यानी ध्यानी गृस्ती, सामी पन्धु पिया।
सभी गेबु थिया तो छा समुझियो पाण खे

प्रत्येक देहधारी को जन्म बालपन, युवानी एवं बुढ़ापे के अंत में शरीर छोड़ना ही है। कोई भी पीर, पैगम्बर, औलिया, फकीर, ऋषि-मुनि या भगवन का अवतार इसमें अपवाद नहीं है। आत्मा तो अमर है, देह नाशवंत है।

तत्त्वदृष्टि से देखें तो महात्माओं के जीवन का हिसाब भला हम कैसे लगा सकते हैं? मृत्यु को मारकर जो चिरंजीवी हुए हैं उनका भला जन्म और मृत्यु कहाँ? जीवन्मुक्त महात्मा लोककल्याण के लिए समय-समय पर इस पृथ्वी पर अवतार धारण करते हैं। अपने भक्तों एवं अज्ञानी जीवों के लिए कल्याणकारी कार्य करके जहाँ के तहाँ ब्रह्मलीन हो जाते हैं।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज अभी स्थूल शरीर के रूप में इस संसार में भले नहीं हैं, किन्तु उनका नाम सदैव अमर रहेगा।

अभी उनकी स्मृति में कई शहरों, गाँवों में अलग-अलग सत्कार्य केन्द्र चल रहे हैं। देश विदेश में उनका जन्मदिन उत्साह के साथ मनाया जाता है। आदिपुर में उनके समाधि स्थल पर उनकी पुण्यतिथि तीन-तीन दिन तक खूब धूमधाम से मनायी जाती है जिसमें दूर-दूर से कई प्रेमी भक्त आते हैं।

ऐसे थे कर्मनिष्ठ, योगी, ज्ञानी, समाजसेवक, देशप्रेमी महापुरुष हमारे प्यारे सदगुरुदेव स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ! श्रीमद भागवत में जड़भरतजी रहूगण राजा के सामने ऐसे महापुरुषों की महिमा का गान करते हुए कहते हैं-

रहूगणैतत्तपसा न याति चेज्यया निर्ववणाद् गृहाद्वा।
न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्।।

'हे रहूगण ! महापुरुषों के चरणों की रज से खुद को स्नान कराये बिना केवल तप-यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादि का दान, अतिथिसेवा, दीनसेवा वगैरह गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्यन अथवा जल, अग्नि या सूर्य की उपासना वगैरह कोई भी साधन से यह परमात्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।'

धन्य हैं ऐसे महापुरुषों को कि जिन्होंने जनसेवा के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करके, मोह-ममता की होली जलाक, त्याग की पराकाष्ठा पर पहुँचकर, दुस्तर माया को पार कर लिया एवं मनुष्य के अंतिम लक्ष्य ऐसे निर्भय पद पर आरूढ़ हो गये।

लाख-लाख वंदन है ऐसे महापुरुषों को, जो संसार-ताप से तपते लोगों को भी उस निर्भय पद की ओर ले जाते हैं।

कोटि-कोटि प्रणाम हैं ऐसे महापुरुषों को जो अपनी ब्रह्मानंद की मस्ती को छोड़कर दूसरों की डगमगाती नैया को किनारे लगाने में मददगार होते हैं।

भगवान हमें शक्ति एवं सदबुद्धि दें ताकि हम पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के जीवन से प्रेरणा लेकर सच्चा मनुष्य बनने का प्रयत्न करें एवं अपने मानव जीवन को सफल बनाने के मार्ग पर आगे बढ़ें।"

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज का ओज, तेज एवं लोक-कल्याण की भावना का बीज अब फल-फूलकर वटवृक्ष हो गया है और वह विश्रांतिदायक विशाल वटवृक्ष किसी से छुपा नहीं है। पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के कृपा-प्रसाद से सुविकसित, शांतिदायी विशाल वटवृक्षस्वरूप बने हुए महापुरुष कि जिनकी गोद में ही पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने अपनी अंतिम श्वास ली थीं, वे महापुरुष आज आध्यात्मिक जगत के सुप्रकाशित भास्कर के रूप में विश्वप्रसिद्ध बने हैं।

पूर्ण गुरु किरपा मिली पूर्ण गुरु का ज्ञान।
आसुमल से हो गये साँई आसाराम।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू के

सत्संग-कथा प्रसंग

तुम से भिन्न दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है

15 जून 1950, नैनिताल।

एक लड़के को उसके पिता ने कहाः

"अन्दर कमरे में जाकर जाँच कर कि वहाँ कितने व्यक्ति सत्संग सुनने के लिए बैठे हैं और कितने लोग उपदेश दे रहे हैं।"

वास्तव में तो एक ही उपदेशक और 50 सत्संगी बैठे थे। वे जिस कमरे में बैठे थे उसके चारों ओर की दीवारों में काँच लगे हुए थे। लड़के ने सभी मनुष्यों को देखा, परन्तु उसके साथ-साथ काँच के अन्दर उन लोगों के प्रतिबिम्ब भी देखे। गिनती करके वह अपने पिता के पास गया और बोलाः

"पिताजी ! दो उपदेशक और सौ सत्संगी बैठे हैं।"

उसके पिता तो सत्य हकीकत जानते ही थे, परन्तु कुछ बोले नहीं। जब सत्संगी चले गये और कमरा खाली हो गया तब पिता बेटे को लेकर अन्दर गये और कहने लगेः

"देख, अन्दर कितने लड़के हैं?"

बेटे ने जवाब दियाः "दो।"

उसके पिता ने कहाः "जा, दूसरे लड़के को यहाँ बुला ला।"

बेटे ने जाकर दूसरे लड़के को पकड़कर लाने की खूब कोशिश की परन्तु दूसरा लड़का वहाँ हो तो पकड़ लाए ना !

अन्त में उसने काँच को जोर से धक्का मारा तो काँच टूट गया और दिखता हुआ दूसरा लड़का भी गायब हो गया। उसने जाकर पिता से कहाः

"मैं ही था, दूसरा कोई लड़का नहीं था।"

तब पिता ने उसे समझायाः

"दूसरा लड़का कोई नहीं था, तू ही था। काँच में तेरा ही प्रतिबिम्ब दिख रहा था। जो उपदेशक भी तुझे दो दिखे वे भी दो न थे और सत्संगी भी सौ न थे, परन्तु उन लोगों के प्रतिबिम्बों को तूने काँच में देखा इसीलिए तुझे सब दुगने दिखे।"

इसी प्रकार इस संसार में भी यह सब एक का ही प्रतिबिम्ब है। तुमसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु नहीं है, परन्तु शरीर को 'मैं' मानने की भ्रान्ति के कारण यह सब विविधता दिख रही है।

एक बार उल्लुओं की पंचायत इकट्ठी हुई। उन लोगों ने एक दूसरे से पूछाः

"तुममें से किसी ने सूर्य को देखा है?"

भला उनमें से किसी ने सूर्य को देखा हो तो 'हाँ' कहे न ! उन लोगों ने निश्चय किया कि सूर्य जैसा कुछ है ही नहीं। ऐसी ही दशा अज्ञानी जीवों की है। वे लोग भी ईश्वर के लिए कहते हैं- "ईश्वर जैसा कुछ नहीं है।"

वे लोग इस जगत को ही सत्य समझ रहे हैं।

अपने आपको भूल के हैरान हो गया।
माया के जाल में फँसा वैरान हो गया।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ज्ञानी का जलकमलवत् जीवन

31 जनवरी 1955, आगरा।

सत्संग के समय एक भक्त ने पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू से पूछाः "स्वामी जी ! ज्ञानी को संसार स्वप्न जैसा कैसे लगता है? संसार यदि स्वप्न जैसा लगता है तो वे व्यवहार किस प्रकार करते हैं?

पूज्य बापू ने कहाः

"बेटा ! ज्ञानी का कर्म कर्त्तव्यबुद्धि से नहीं होता वरन् सहजबुद्धि से होता है। सहज एवं शुद्ध बुद्धि में संसार स्वप्न जैसा लगता है और उसका अनुभव होता है फलतः कर्म उन्हें बन्धनरूप नहीं होते। इसीलिए ज्ञानी को संसार स्वप्न जैसा लगता है।

ज्ञानी सदा कमल के फूल की तरह निर्लेप रहते हैं। जिस प्रकार खरबूजा बाहर से अलग-अलग फाँक वाला दिखता है परन्तु अन्दर से एकरस होता है उसी प्रकार दुनिया में रहने पर भी ज्ञानी का व्यवहार बाहर से अलग-अलग दिखता है, परन्तु अन्दर से वे एकरस होते हैं। वे देह को अनित्य और आत्मा को नित्य जानते हैं। 'यह जगत मेरा आत्मस्वरूप ही है। इस जगत में राग या द्वेष करने जैसा कोई पदार्थ नहीं है.... 'ऐसे अद्वैतभाव में वे स्थित होते हैं।

ज्ञानी संसार में रहते हुए भी संसार में नहीं होते। बाहर से कर्त्ता दिखते हैं परन्तु अंदर से अकर्त्ता, अभोक्ता भाव में स्थित होते हैं।

सुखु दुखु दोनों सम करि जानै अउरु मानु अपमाना।
हरख सोग ते रहे अतीता, तिनि जगि ततु पछाना।।

जिस प्रकार वैज्ञानिक समझते हैं कि सिनेमा के दृश्य परदे के ऊपर पड़ने वाले प्रकाश से ज्यादा कुछ नहीं हैं उसी प्रकार ज्ञानी भी समझते हैं कि यह जगत भी कल्पित है और आत्मा के

सिवाय दूसरा कुछ भी सत्य नहीं है। शरीर के प्रारब्ध के अनुसार ज्ञानी सभी कर्म करते हुए दिखते हैं, परन्तु उनमें कर्त्तापने और भोक्तापने का भाव नहीं रहता। इन्द्रियाँ खुद ही कर्म करती हैं - ऐसा मानकर ज्ञानी महापुरुष वैराग्ययुक्त रहते हैं। सोना, जागना, खाना, पीना, उठना, बैठना घूमना, देखना, स्पर्श करना, सूँघना, सुनना वगैरह क्रियाओं मे अज्ञानी की तरह वे बँध नहीं जात। क्योंकि ज्ञानी उन-उन विषयों में इन्द्रियों को ही भोग कराते हैं और खुद साक्षी रूप रहकर उन विषयों का भोग नहीं करते, ठीक वैसे ही कि जैसे आकाश सर्वत्र है फिर भी उसे जल का स्पर्श नहीं होता और वायु सब जगह बहती है फिर भी कहीं रुकती नहीं। उसी प्रकार ज्ञानी प्रकृति में रहते हुए भी उसमें आसक्त नहीं होते। जिस प्रकार स्वप्न में से जाग्रत अवस्था में आया हुआ मनुष्य स्वप्न में देखे हुए प्रपंच से अपने को निर्लेप जानता है उसी प्रकार वैराग्य से तीक्ष्ण बनी हुई बुद्धिवाले एवं निर्गुण ब्रह्मविद्या से छेदे हुए संशयोंवाले ज्ञानी भी देहादिक प्रपंचो से अपने को निर्लेप जानते हैं। ज्ञानी के प्राण, इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि की वृत्तियाँ संकल्परहित हो जाती हैं। वे देह में रहते हुए भी देह के गुणों से मुक्त होते हैं।

जगत का कल्याण करने के लिए अनेक प्रकार के कर्म करते हुए भी जीवन्मुक्त कर्मों से लेपायमान नहीं होते। अनेकों के परिचय में आते हुए भी वे पूर्णतः निर्लेप रहते हैं। वस्तुओं से उन्हें राग नहीं होता। नित्य, निरन्तर उनका चित्त परमात्मा में ही स्थित रहता है। इस जगत को वे मिथ्या मानते हैं। वे भविष्य का विचार नहीं करते और न ही वर्त्तमान के पदार्थों में विश्वास रखते हैं। इसी प्रकार भूतकाल के चिन्तन में भी नहीं रहते। निद्रा अवस्था में भी उनका चित्त योगनिद्रा में होता है। जाग्रत अवस्था में भी मानो निर्विकल्प समाधि की अवस्था में निमग्न रहते हैं। कोई भी पदार्थ, व्यक्ति या प्रसंग से उन्हें हर्ष या शोक नहीं होता। जिस प्रकार पालने में सोता हुआ बालक मन के अनुसंधान के सिवाय भी हाथ-पैर हिलाने की चेष्टा करता है उसी प्रकार ज्ञानी महापुरुष बाह्य अंगों से सभी चेष्टाएँ करते हैं परन्तु उन चेष्टाओं में उनका चित्त संलग्न नहीं होता।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सावधान नर सदा सुखी

15 जून 1947, नैनिताल।

एक साधक ने प्रश्न किया:

"महाराज जी ! साधनाकाल के दौरान साधक को कौन-कौन सी सावधानी रखनी चाहिए?"

पूज्य बापू ने एक छोटा-सा उदाहरण देते हुए कहा:

"एक बार सागर में नाव चलाने वाले खलासी लोग अपने मुखिया के पास गये और अपनी बड़ाई हाँकने लगे:

'देखो मुखिया जी ! हम लोग कितने साहसी और होशियार हैं कि वीरतापूर्वक भँवरों तक भी नाव को ले जाते हैं और भँवरों को पार करके सुरक्षित वापस आ जाते हैं। परन्तु यह जो भीमा है न, वह बहुत डरपोक है। यह तो नाव लेकर इस प्रकार भँवरों की ओर जाता ही नहीं है। कितना बुद्धु है?'

अनुभवी मुखिया ने जवाब दियाः

'तुम लोग भले ही भँवरों को पार करके आ जाते हों, परन्तु तुम्हारी अपेक्षा तो यह भीमा ज्यादा होशियार है। यह ऐसी भयानक जगह पर जाता ही नहीं कि जहाँ जिन्दगी जोखिम में हो। तुम लोग वहाँ जाते हो तो कभी ऐसे फँस जाओगे कि वापस आ ही नहीं सकोगे। नाव सहित सागर की गहराई में खो जाओगे। भीमा तो ऐसे किसी खतरे में पड़ता ही नहीं है।'

इस प्रकार सन्मार्ग के पथिकों को भी विषय-विकारों से दूर रहना चाहिए। जो विषय विकारों से दूर रहते हैं वे लोग भाग्यवान हैं और गृहस्थ आश्रम में रहकर भी जो उनसे दूर रहते हैं वे लोग ज्यादा प्रशंसनीय हैं। विषय-भोगों को भोगते-भोगते लोग विषय-भोगों को मक्खन एवं पेड़े समझते हैं, परन्तु सच कहूँ तो वे लोग चूना ही खाते हैं। चूना खाने से क्या दशा होती है यह तो सभी को पता ही होगा। मनुष्य बेचारा मर जाता है। जिस प्रकार साँप को हाथ लगाने से साँप काट लेता है और उसका जहर चढ़ जाता है इसी प्रकार विषय-भोग जहर के समान हैं। उन्हें थोड़ा भी भोगोगे तो पीछे से बहुत दुःख सहन करना पड़ेगा।

कोई मनुष्य जुआ नहीं खेलता, परन्तु रोज-रोज जुआरियों का संग करके उन लोगों को जुआ खेलते देखकर खुद भी जुआ खेलना सीख जाता है। फिर उसे जुआ का ऐसा चस्का लग जाता है कि वह उसके बिना नहीं रह सकता। यही स्थिति विषय-विकारों के साथ भी है इसलिए विषय-विकारों से दूर भागो।

इसके सिवाय, साधकों को निन्दा-स्तुति, राग-द्वेष आदि के भँवर में भी नहीं जाना चाहिए। उसमें गिरकर पुनः चेत जाओ तो ठीक है, परंतु कई बार तो ऐसे भँवर में फँसकर ही जीवन पूरा हो जाता है।

लोग साधना भी करते हैं, भक्ति भी करते हैं, पूजा-पाठ भी करते हैं, ध्यान-भजन भी करते हैं, सेवा भी करते हैं, गुरु के शिष्य भी कहलाते हैं, परन्तु राग-द्वेष के भँवर में जाने की आदत नहीं जाती तो सब साधन-भजन और सेवा के ऊपर पानी फिर जाता है।

साधकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि जिन्हें खराब समझते हैं उनके साथ उदारता से व्यवहार करें, उनके गुण देखें, दोषों को भूल जायें। ऐसा करने से चित्त में शान्ति आने लगेगी। राग-द्वेष को पुष्ट करेंगे तो सभी साधन-भजन चौपट हो जायेंगे। ईर्ष्या और जलन से अन्तःकरण अशुद्ध बनेगा तो साधना का पथ लम्बा हो जायेगा।

आये थे हरिभजन को, ओटन लागे कपास।

जो संसार मिथ्या है, हर क्षण बदल रहा है, स्वप्न की तरह गुजरता जा रहा है उसकी सत्यता को दिमाग में भरने से परेशानी के सिवाय कुछ भी हाथ में नहीं आता। तुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस में शिवजी के मुख से कहलवाया हैः

उमां कहहूँ मैं अनुभव अपना।
सत्य हरि भजन जगत सब सपना॥।

सर्वत्र केवल परमात्मा ही व्याप रहे हैं यह जानना ही **'सत्य हरिभजन'** का अर्थ है। यदि इसे पूर्ण रूप से जान लिया तो राग-द्वेष, आकर्षण-विकर्षण, इच्छा-वासना सब दूर हो जायेंगे और अपना सहज स्वभाव प्रकट हो जायेगा।

साधना में विघ्न डालें ऐसी बेवकूफियों को हटाओ। दुःख देने वाले अज्ञान को मिटाओ। जगत की सत्यता को चित्त में से हटाओ और अपनी महिमा को जानो। उसके लिए जप करो, सेवा करो और अन्तःकरण को शुद्ध करो। साक्षीभाव एवं समता में रहने का अभ्यास करने से अन्तःकरण शुद्ध होगा जिससे शुद्ध आत्मरस और शुद्ध सुख प्रकट होगा। सत्पुरुषों का संग एवं सत्शास्त्रों का पठन-मनन करने से साधनाकाल की विघ्न-बाधाएँ कम होने लगेंगी।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अभ्यास में रूचि क्यों नहीं होती?

15 जनवरी 1958, कानपुर।

सत्संग-प्रसंग पर एक जिज्ञासु ने पूज्य बापू से प्रश्न कियाः

"स्वामीजी ! कृपा करके बताएँ कि हमें अभ्यास में रूचि क्यों नहीं होती?"

पूज्य स्वामीजीः "बाबा ! अभ्यास में तब मजा आयेगा जब उसकी जरूरत का अनुभव करोगे।

एक बार एक सियार को खूब प्यास लगी। प्यास से परेशान होता दौड़ता-दौड़ता वह एक नदी के किनारे पर गया और जल्दी-जल्दी पानी पीने लगा। सियार की पानी पीने की इतनी तड़प देखकर नदी में रहने वाली एक मछली ने उससे पूछाः

'सियार मामा ! तुम्हें पानी से इतना सारा मजा क्यों आता है? मुझे तो पानी में इतना मजा नहीं आता।'

सियार ने जवाब दियाः 'मुझे पानी से इतना मजा क्यों आता है यह तुझे जानना है?'

मछली ने कहाः "हाँ मामा!"

सियार ने तुरन्त ही मछली को गले से पकड़कर तपी हुई बालू पर फेंक दिया। मछली बेचारी पानी के बिना बहुत छटपटाने लगी, खूब परेशान हो गई और मृत्यु के एकदम निकट आ गयी। तब सियार ने उसे पुनः पानी में डाल दिया। फिर मछली से पूछाः

'क्यों? अब तुझे पानी में मजा आने का कारण समझ में आया?'

मछलीः 'हाँ, अब मुझे पता चला कि पानी ही मेरा जीवन है। उसके सिवाय मेरा जीना असम्भव है।'

इस प्रकार मछली की तरह जब तुम भी अभ्यास की जरूरत का अनुभव करोगे तब तुम अभ्यास के बिना रह नहीं सकोगे। रात दिन उसी में लगे रहोगे।

एक बार गुरु नानकदेव से उनकी माता ने पूछाः

'बेटा ! रात-दिन क्या बोलता रहता है?'

नानकजी ने कहाः 'माता जी ! **आखां जीवां विसरे मर जाय।** रात-दिन मैं अकाल पुरुष के नाम का स्मरण करता हूँ तभी तो जीवित रह सकता हूँ। यदि नहीं जपूँ तो जीना मुश्किल है। यह सब प्रभुनाम-स्मरण की कृपा है।'

इस प्रकार सत्पुरुष अपने साधना-काल में प्रभुनाम-स्मरण के अभ्यास की आवश्यकता का अनुभव करके उसके रंग में रंगे रहते हैं।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जीव और शिव का भेद कैसे मिटे

15 जून 1958, कानपुर।

कानपुर के सत्संग में एक साधक ने प्रश्न पूछाः "स्वामी जी ! जीवात्मा और परमात्मा में भेद क्यों दिखता है?"

पूज्य बापू ने एक छोटा-सा किन्तु सचोट उदाहरण देकर सरलता से जवाब देते हुए कहाः

"सच्चे अर्थों में जीवात्मा और परमात्मा दोनों अलग नहीं हैं। जब जीवभाव की अज्ञानता निकल जायेगी और माया की तरफ दृष्टि नहीं डालोगे तब ये दोनों एक ही दिखेंगे। जिस प्रकार थोड़े से गेहूँ एक डिब्बे में हैं और थोड़े से गेहूँ एक टोकरी में हैं और तुम बाद में 'डिब्बे के गेहूँ और टोकरी के गेहूँ' इस प्रकार अलग-अलग नाम देते हो परन्तु यदि तुम 'डिब्बा' और 'टोकरी' ये नाम निकाल दो तो बाकी जो रहेगा वह गेहूँ ही रहेगा।"

दूसरा एक सरल दृष्टांत देते हुए पूज्यश्री ने कहाः

"एक गुरु के शिष्य ने कहाः 'बेटा !गंगाजल ले आ।' शिष्य तुरन्त ही गंगा नदी में से एक लोटा पानी भरकर ले आया और गुरुजी को दिया। गुरुजी ने शिष्य से कहाः

'बेटा ! यह गंगाजल कहाँ है? गंगा के पानी में तो नावें चलती हैं। इसमें नाव कहाँ है? गंगा में तो लोग स्नान करते हैं। इस पानी में लोग स्नान करते हुए क्यों नहीं दिखते?'

शिष्य घबरा गया और बोलाः

'गुरुजी ! मैं तो गंगा नदी में से ही यह जल लेकर आया हूँ।'

शिष्य को घबराया हुआ देखकर गुरुजी ने धीरे से कहाः

'बेटा ! घबरा मत। इस पानी और गंगा के पानी में जरा भी भेद नहीं है। केवल मन की कल्पना के कारण ही भिन्नता भासती है। वास्तव में दोनों पानी एक ही हैं और इस पानी को फिर से गंगा में डालेगा तो यह गंगा का पानी हो जायेगा और रत्ती भर भी भेद नहीं लगेगा।

इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा भ्रान्ति के कारण अलग-अलग दिखते हैं, परन्तु दोनों एक ही हैं।'

जिस प्रकार एक कमरे के बाहर की और अन्दर की जमीन अलग-अलग दिखती है लेकिन जो दीवार उस जमीन को अलग करती है वह दीवार पाताल तक तो नहीं गयी है। वास्तव में जमीन में कोई भेद नहीं है। दोनों जमीन तो एक ही हैं परन्तु दीवार की भ्रान्ति के कारण अलग-अलग नाम से जानी जाती हैं। ऐसी ही बात जीव और ब्रह्म के साथ है।

घट में स्थित आकाश को घटाकाश कहा जाता है और मठ में स्थित आकाश को मठाकाश कहा जाता है। इन दोनों से बाहर जो व्यापक आकाश है वह महाकाश कहलाता है। घट और मठ की उपाधि से घटाकाश और मठाकाश कहलाता है। वास्तव में घटाकाश और मठाकाश महाकाश से भिन्न नहीं है। घट टूट जाने के बाद घटाकाश महाकाश में मिल जाता है। घट की उपस्थिति में भी घटाकाश महाकाश से मिला हुआ ही है लेकिन घट की उपाधि के कारण घटाकाश महाकाश से अलग होने की भ्रांति होती है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

महामूर्ख कौन ?

26 जून 1958, नैनिताल।

आश्रम में पूज्य स्वामी जी थोड़े से भक्तों के सामने सत्संग कर रहे थे, तब एक गृहस्थी साधक ने प्रश्न पूछाः

"गृहस्थाश्रम में रहकर प्रभुभक्ति कैसे की जा सकती है?"

पूज्य स्वामी जी ने प्रश्न का जवाब देते हुए एक सार गर्भित वार्ता कहीः

"ज्ञानचंद नामक एक जिज्ञासु भक्त था। वह सदैव प्रभुभक्ति में लीन रहता था। रोज सुबह उठकर पूजा-पाठ, ध्यान-भजन करने का उसका नियम था। उसके बाद वह दुकान में काम करने जाता। दोपहर के भोजन के समय वह दुकान बंद कर देता और फिर दुकान नहीं खोलता था। बाकी के समय में वह साधु-संतों को भोजन करवाता, गरीबों की सेवा करता, साधु-संग एवं दान-पुण्य करता। व्यापार में जो भी मिलता उसी में संतोष रखकर प्रभुप्रीति के लिए जीवन बिताता था। उसके ऐसे व्यवहार से लोगों को आश्चर्य होता और लोग उसे पागल समझते। लोग कहतेः

'यह तो महामूर्ख है। कमाये हुए सभी पैसों को दान में लुटा देता है। फिर दुकान भी थोड़ी देर के लिए ही खोलता है। सुबह का कमाई करने का समय भी पूजा-पाठ में गँवा देता है। यह तो पागल ही है।'

एक बार गाँव के नगरसेठ ने उसे अपने पास बुलाया। उसने एक लाल टोपी बनायी थी। नगरसेठ ने वह टोपी ज्ञानचंद को देते हुए कहाः

'यह टोपी मूर्खों के लिए है। तेरे जैसा महान् मूर्ख मैंने अभी तक नहीं देखा, इसलिए यह टोपी तुझे पहनने के लिए देता हूँ। इसके बाद यदि कोई तेरे से भी ज्यादा बड़ा मूर्ख दिखे तो तू उसे पहनने के लिए दे देना।'

ज्ञानचंद शांति से वह टोपी लेकर घर वापस आ गया। एक दिन वह नगर सेठ खूब बीमार पड़ा। ज्ञानचंद उससे मिलने गया और उसकी तबीयत के हालचाल पूछे। नगरसेठ ने कहाः

'भाई ! अब तो जाने की तैयारी कर रहा हूँ।'

ज्ञानचंद ने पूछाः 'कहाँ जाने की तैयारी कर रहे हो? वहाँ आपसे पहले किसी व्यक्ति को सब तैयारी करने के लिए भेजा कि नहीं? आपके साथ आपकी स्त्री, पुत्र, धन, गाड़ी, बंगला वगैरह आयेगा कि नहीं?'

'भाई ! वहाँ कौन साथ आयेगा? कोई भी साथ नहीं आने वाला है। अकेले ही जाना है। कुटुंब-परिवार, धन-दौलत, महल-गाड़ियाँ सब छोड़कर यहाँ से जाना है। आत्मा-परमात्मा के सिवाय किसी का साथ नहीं रहने वाला है।'

सेठ के इन शब्दों को सुनकर ज्ञानचंद ने खुद को दी गयी वह लाल टोपी नगरसेठ को वापस देते हुए कहाः

'आप ही इसे पहनो।'

नगरसेठः 'क्यों?'

ज्ञानचंदः 'मुझसे ज्यादा मूर्ख तो आप हैं। जब आपको पता था कि पूरी संपत्ति, मकान, परिवार वगैरह सब यहीं रह जायेगा, आपका कोई भी साथी आपके साथ नहीं आयेगा, भगवान के सिवाय कोई भी सच्चा सहारा नहीं है, फिर भी आपने पूरी जिंदगी इन्हीं सबके पीछे क्यों बरबाद कर दी?

सुख में आन बहुत मिल बैठत रहत चौदिस घेरे।
विपत पड़े सभी संग छोड़त कोउ न आवे नेरे।।

जब कोई धनवान एवं शक्तिवान होता है तब सभी 'सेठ... सेठ.... साहब... साहब...' करते रहते हैं और अपने स्वार्थ के लिए आपके आसपास घूमते रहते हैं। परंतु जब कोई मुसीबत आती है तब कोई भी मदद के लिए पास नहीं आता। ऐसा जानने के बाद भी आपने क्षणभंगुर वस्तुओं एवं संबंधों के साथ प्रीति की, भगवान से दूर रहे एवं अपने भविष्य का सामान इकट्ठा न किया तो ऐसी अवस्था में आपसे महान् मूर्ख दूसरा कौन हो सकता है? गुरु तेगबहादुर जी ने कहा हैः

करणो हुतो सु ना कीओ परिओ लोभ के फंध।
नानक समिओ रमि गइओ अब किउ रोवत अंध।।

सेठ जी ! अब तो आप कुछ भी नहीं कर सकते। आप भी देख रहे हो कि कोई भी आपकी सहायता करने वाला नहीं है।'

क्या वे लोग महामूर्ख नहीं हैं जो जानते हुए भी मोह-माया में फँसकर ईश्वर से विमुख रहते हैं? संसार की चीजों में, संबंधों का संग एवं दान-पुण्य करते हुए जिंदगी व्यतीत करते तो इस प्रकार दुःखी होने एवं पछताने का समय न आता।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भगवान किस पर ज्यादा प्रसन्न रहते हैं?

25 अप्रैल 1961, श्रीकृष्ण गौशाला, आगरा।

पूज्य स्वामी जी से किसी ने पूछाः "स्वामी जी ! भगवान किस व्यक्ति पर ज्यादा प्रसन्न होते हैं?"

पूज्य स्वामीजीः "भगवान भक्त, दाता, नम्र एवं शूरवीर-इन चार प्रकार के व्यक्तियों पर ज्यादा प्रसन्न होते हैं।

भक्तः भक्त ऐसा हो जो बालक अवस्था से लेकर जवानी एवं बुढ़ापे तक का अपना पूरा जीवन परमेश्वर की भक्ति में बिताये।

दाताः दाता ऐसा होना चाहिए जो निर्धन होने के बावजूद भी धर्म के दान में प्रीति रखता हो।

नम्रः नम्र माने ऐसा व्यक्ति जो धनवान एवं कुलीन होते हुए भी नम्र हो।

शूरवीरः शूरवीर ऐसा होना चाहिए जो धर्म एवं संस्कृति के लिए अपने सिर का भी बलिदान कर दे एवं इन्द्रियजीत हो।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आनन्द का उदगम स्थान क्या है?

6 जून 1962, नैनिताल आश्रम।

संतोष, सुमति, सादगी बक्ष करो भगवान।
सबका बेड़ा पार हो दीजिए भक्ति ज्ञान।।

समझदार लोग समझते हैं कि दुनिया के विषयों में, पदार्थों में, वास्तविक सुख नहीं है। तो वास्तविक सुख कहाँ है? हम जब प्रगाढ़ निद्रा में से जागते हैं तब आनन्द भासता है। इससे सिद्ध होता है कि सुख अथवा आनन्द के विषयों के, पदार्थों के बिना भी विद्यमान है। प्रगाढ़ निद्रा में कोई भी पदार्थ उपस्थित नहीं है फिर भी सुखानुभूति है। नींद में से उठने के बाद जब आप कहते हो कि 'खूब शांति से सोया' तब आपका कथन यह बताता है कि गहरी नींद अथवा सुषुप्ति अवस्था में आनन्द है। उस अवस्था में आनन्द क्यों लगता है? क्योंकि उस अवस्था में मन एकाग्र हो जाता है और अन्तःकरण की उस अवस्था में आत्मा की छाया पड़ती है तब सुख मिलता है अथवा आनन्द की अनुभूति होती है।

जब हमें कोई इच्छित वस्तु मिलती है अथवा कोई सगे-सम्बन्धी मिलते हैं तब हमें आनन्द होता है। उस समय हम समझते हैं कि वह आनन्द या प्रसन्नता वस्तु अथवा सगे-सम्बन्धियों के मिलने से प्राप्त हुई, परन्तु वास्तव में वह आनन्द उनमें से नहीं मिलता। कई बार हम महसूस करते हैं कि जब हम स्वस्थ नहीं होते तब उस वस्तु अथवा सगे-सम्बन्धी मिलने पर आनन्द नहीं मिलता। स्वस्थ व्यक्ति को इच्छित वस्तु अथवा सगे-सम्बन्धी मिलने पर खुशी इसलिए होती है कि उस समय उसका मन बीमार अवस्था की अपेक्षा ज्यादा स्थिर और एकाग्र होता है। बीमार अवस्था में मन ठीक से स्थिर और एकाग्र नहीं होता, चंचल होता है इसलिए वे चीजें मिलने के बावजूद भी आनन्द नहीं मिलता।

इससे हम समझ सकते हैं कि रमणीय वस्तु अथवा सगे-सम्बन्धियों में आनन्द नहीं है। यदि उनमें आनन्द होता तो अस्वस्थता एवं नीरोगता दोनों अवस्थाओं में वह आनन्द समानरूप से मिलना चाहिए था। याद रखो कि आनन्द तो भगवदस्वरूप आत्मा में है। मन एकाग्र बनता है तब उसमें आत्मा की छाया पड़ती है इसलिए आनन्द मिलता है। चंचल मन में आत्मा की छाया ठीक से नहीं पड़ती इसलिए आनन्द नहीं मिलता।

आत्मा के संयोग से आनन्द मिलता है। आनन्द मन में अथवा वस्तु में नहीं है, परन्तु आत्मा में है और जो आनन्द होता है वह आत्मा का स्पन्दन मात्र है। आनन्द बाहर नहीं है।

जिन विषयों में आनन्द भासित होता है वह आनन्द तो कृत्रिम है। उदाहरणार्थः फोड़ा हुआ और उस पर पट्टी बाँधी तो मलहम अथवा पट्टी अथवा फोड़े में से नहीं निकला। फोड़ा होने के पहले जो सुख था वह सुख ओझल हो गया था जो अब पुनः प्रगट हुआ। कोई नया सुख नहीं मिला। किन्तु दुःख देखे बिना सुख समझ में नहीं आता, सुख की कद्र नहीं होती, अन्यथा आत्मा का सुख तो निरन्तर बना हुआ है।

दूसरा उदाहरण देखें- जब तालाब का जल स्थिर और तुच्छ होता है उसके तले की रेती दिखती है किन्तु पानी अगर चंचल और मैला होता है तो तालाब का तल नहीं दिखाई देता।

मनरूपी जल स्थिर और स्वच्छ होता है तो तलरूपी आनन्द तो विद्यमान है ही। इच्छाओं के कारण मटमैला हुआ मनरूपी पानी तलरूपी आनन्द को नहीं दिखाता इसीलिए सुखानुभूति के लिए मन स्थिर होना चाहिए।

पदार्थों में सुखानुभूति करते समय मनुष्य वास्तव में अपनी आत्मा का ही आनन्द लेते हैं और उस आनन्द को पदार्थों में आरोपित कर देते हैं। प्रत्येक सुख शुद्ध आनन्द के भण्डार में से ही आता है किन्तु भूला हुआ जीव आनन्द के मूल उदगम-स्थान पर मूल पद पर नहीं आता।

यदि मनुष्य की दृष्टि बदल जाये तो यह सत्य समझा जा सकता है। वस्तु में आनन्द मानने की आदत पड़ गई है उससे आनन्द प्रगटता नहीं। सूखी हड्डी चबाते हुए कुत्ते के जबड़े में उस हडड़ी के कारण जख्म हो जाता है और उससे खून निकलता है। कुत्ते को उस खून का स्वाद आता है। वह समझता है कि खून हड्डी में से निकल रहा है। वह ऐसा नहीं जानता कि यह तो उसका खुद का खून है। हड्डी में खून कहाँ से आयेगा?

लाखों में से किसी एक विरले को ही सच्चे सुख अथवा आनन्द का ज्ञान होता है। हम सब सुख तो चाहते हैं परन्तु समझते हैं कि सुख इन्द्रियों अथवा विषयों में यानी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध में है, परन्तु वह सच्चा सुख नहीं है। सच्चा सुख तो आत्मा में है। उस सुख की झलक यदि एक बार भी मिल जाये तो फिर संसार के भोग और संसार के पदार्थ फीके लगेंगे और मन बार-बार उस आत्मसुख की ओर दौड़ेगा।

अतः संसार में होते हुए भी हृदय में निरन्तर भगवान का, स्मरण करते रहो। कर्म करते हुए भी अकर्त्ता-अभोक्ता होकर रहो। खराब संग, खराब विचार, खराब कर्म से हमेशा दूर रहो। सदैव भलाई के और पुण्य के कार्य करते रहो। सच्चे संकल्प एवं शुभ विचारों से, भलाई के कर्म करने से अन्तःकरण निर्मल होगा। ऐसा करने से अन्तःकरण में संसार की जगह परमात्मा का स्मरण बढ़ जायेगा और सच्चा सुख एवं शान्ति मिलेगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विजय किसकी होगी ?

14 अप्रैल 1965, आगरा।

स्वामी जी सत्संग-मंडप में व्यासपीठ पर विराजमान थे। उस समय किसी भक्त ने धर्म की विजय के बारे में स्वामी जी से पूछाः

"स्वामीजी ! चारों ओर युद्ध के काले बादल मंडरा रहे हैं, जिन्हें देखकर दिल काँप उठता है। अन्त में विजय किसकी होगी?"

पूज्य स्वामी जी ने मंद-मंद मुस्कराते हुए जवाब दियाः

"बाबा ! यह कोई नई बात नहीं है। युगों से यह रीति चली आ रही है। प्रकृति के नियम के अनुसार हमेशा धर्म की विजय और अधर्म का नाश होता है। कौरव एवं पाण्डव के युद्ध को हजारों वर्ष हो गये, फिर भी आज पाण्डवों का यश चमक रहा है। श्रीरामचन्द्रजी के साथ रावण का घोर युद्ध हुआ जिसमें कई राक्षस मारे गये। अन्त में भगवान राम की विजय हुई। अत्याचार, अधर्म, अनीति और अन्याय के कारण कौरव एवं रावण की आखिर में पराजय हुई।"

पाप का घड़ा भरकर अन्त में फूट जाता है, परन्तु जो धर्म के, सत्य के, कल्याण के मार्ग पर चलता है उसे भला भय कैसा ? उन लोगों को शुरुआत में दुःख अवश्य देखना पड़ता है, परन्तु अन्त में विजय तो सत्य की ही होती है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अपना आत्म-साम्राज्य पा लो

16 दिसम्बर 1965, श्रीकृष्ण गौशाला, आगरा।

भ्रान्ति अर्थात् सत्य वस्तु को यथावत् न जानकर उसे गलत रूप से मानना या जानना। जैसे, हो तो रस्सी और दिखे सर्प। वास्तविक रूप से देखें तो वह सर्प होता नहीं है और काटता भी नहीं है। उसी प्रकार सत्यस्वरूप परमात्मा को न जानकर नाम रूपवाले जगत को सत्य मानना यह भ्रान्ति है। जगत में जो मोह अथवा भ्रान्ति भास रही है वह नाम-रूप की है। हम जो भी वस्तु देखते हैं वे सब मिट्टी के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है। फिर भी घड़ा, पुस्तक, मनुष्य, पशु, मकान वगैरह नाम व्यवहार को चलाने के लिए देने पड़ते हैं। स्वरूप के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है फिर भी भासित होने वाले जीवरूप हम, भासनेवाली वस्तुओं में व्यवहार के लिए अलग-अलग नाम-रूप देते हैं और उन्हें ही सत्य मान लेते हैं। उदाहरणार्थः एक कागज पर हम छलनी ढाँक दें तो प्रत्येक छिद्र में से कागज दिखता है फिर भी प्रत्येक छिद्रवाला भाग अपने को दूसरे छिद्रवाले भाग से अलग माने तो यह भ्रान्ति है। इसी प्रकार माया के आवरण से ढका हुआ जीव जब जन्मता है तब उसमें देह, कुटुम्ब एवं जगत के जैसे संस्कार पड़ते हैं वैसा वह अपने को मान लेता है। यह माया का आवरण हट जाये या अविद्या निकल जाये तो सच्चा आनन्द प्रकट होगा। सिंधी के प्रसिद्ध कवि सामी साहब कहते हैं-

अविद्या भुलाऐ, विधो जीउ भरम में।
नांगु डिसी नोढ़ीअ में, डंगु रे डहकाए।।
अण हुन्दे दरियाह में, गोता नितु खाए।
मुंह मढ़ीअ पाय सामी डिसे कीनकी।।

अविद्या ने भूल-भुलैया करके जीव को भ्रम में डाल दिया है अतः यह जीव स्वयं को दुःखी बना रहा है। जहाँ सागर ही नहीं है वहाँ सागर में ही गोता खा रहा है। 'सामी' कहते हैं कि ' हे जीव ! तू अन्तर में झाँककर तो देख।'

एक बार एक राजमहल में पाँच वर्ष का राजकुमार सोया हुआ था। एक भील ने अवसर देखकर धन के लोभ में उस राजकुमार को उठा लिया। जंगल में जाकर उसके सब आभूषण ले लिए और उस राजकुमार को अपने बेटों के साथ पालने लगा। राजकुमार भील के बच्चों के साथ खाते-पीते और खेलते-खेलते उन जैसा ही हो गया।

जब राजकुमार युवावस्था में आया तो वह भी भील लोगों जैसा व्यवहार और काम करने लगा अर्थात् हिंसा, चोरी, पाप, जीवों की हत्या करने लगा और अपने को भील ही समझने लगा। एक दिन वह घूमते-घामते, शिकार करते-करते घोर जंगल में पहुँच गया। रास्ते में उसे पानी की बहुत प्यास लगी। पानी की खोज में इधर-उधर जाँच की तो उसे एक महात्मा की कुटिया नजर आयी। तुरन्त ही कुटिया में जाकर उसने उन महात्मा को प्रणाम किया एवं प्रार्थना कीः

"महाराज ! मुझे बहुत प्यास लगी है। मेहरबानी करके मुझे पानी पिलाइए।"

पहले वे महात्मा जब उस राजकुमार के राज्य में जाते थे तब उन्होंने उस राजकुमार को अच्छी तरह देखा था। अतः राजकुमार को देखते ही वे उसे पहचान गये कि यह तो खोया हुआ राजकुमार है। महात्मा ने उसे बैठाया और कहाः

"मैं तुझे पानी तो पिलाऊँगा, परन्तु तू पहले मुझे जवाब दे कि तू कौन है ?"

लड़के ने जवाब दियाः "मैं भील हूँ।"

महात्मा ने कहाः "तू भील नही है परन्तु राजकुमार है। मैं तुझे अच्छी तरह जानता हूँ। तू भील लोगों के साथ बड़ा होकर भील लोगों जैसे काम करके अपने को भील समझने लगा है।

तू अपने आपको पहचान कि तू कौन है? अपने वास्तविक स्वरूप को याद कर। जब तुझे तेरी सच्ची पहचान होगी तब तू भील के जीवन को छोड़कर राजमहल में जाकर राज्य-सुख भोगेगा।"

राजकुमार ने महात्मा के वचन सुनकर अपना बचपन याद किया तो उसे अपने माँ-बाप, राज्य, राजदरबार, सेवक, वगैरह याद आ गये और तुरन्त ही स्मरण हुआ कि "मैं भील नहीं, मैं निःसंदेह राजकुमार हूँ। अब तक अज्ञानता में व्यर्थ ही अपने को भील समझकर दीन-हीन होकर भील का तुच्छ जीवन जीता था।"

महात्मा ने तुरन्त राजा को सन्देश भेजा कि आपका खोया हुआ राजकुमार मिल गया है। राजा ने तुरन्त ही राजकुमार के वस्त्र, आभूषण, घोड़े, रथ वगैरह भेजे। फिर राजा के आदमियों के साथ राजकुमार राजमहल में गया। वहाँ राजपद पाकर आनन्द से रहने लगा।

इस दृष्टांत का तात्पर्य यह है कि इस जीवरूप राजकुमार को देहाध्यास अर्थात् भ्रान्ति के कारण काम, क्रोध, लोभ वगैरह भीलों ने अपने वश में करके संसाररूपी घोर वन में ले जाकर

उसके दैवी सम्पदा के सदगुणरूपी आभूषणों को उतारकर काम, क्रोध आदि भील विकारों ने अपने जैसा ही बना दिया है। यह जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर भ्रान्ति से अपने को भील मानकर अनेक प्रकार के कुकर्म कर रहा है। अज्ञानता के कारण यह समझ रहा है कि 'मैं कर्त्ता हूँ.... मैं भोक्ता हूँ.... मैं पुण्यात्मा हूँ.... मैं पापी हूँ..... मैं दुःखी हूँ....'

इस प्रकार अज्ञानी जीव अपने को कर्त्ता-भोक्ता, सुखी-दुःखी मानकर संसाररूपी जंगल में भटक रहा है। जब वह किसी पुण्यों के प्रताप से किन्ही आत्मवेत्ता सदगुरु की शरण में जाता है तब सदगुरु उसे ज्ञान का उपदेश देते हैं कि 'तू देह नहीं है... तू अज्ञानी नहीं है.... तू जाति-वर्णवाला नहीं है.... तू कर्त्ता-भोक्ता नहीं है.... तू पाप-पुण्य के संबंधवाला नहीं है। तू शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंदस्वरूप, चिदघनस्वरूप को भूलकर इस अवस्था में आया है। जब तू अपने वास्तविक स्वरूप को जानेगा तभी सुखी होगा और सच्ची शान्ति पायेगा।'

सदगुरु के ऐसे उपदेश से वह जीव देहाध्यास की भ्रान्ति को हटाकर अपने साक्षीस्वरूप को, अभिन्न एकरूप ब्रह्म की अद्वैत निष्ठा को प्राप्त करके सुखसागर में, ब्रह्म में निमग्न हो जाता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

नानक ! दुखिया सब संसार.....

4 मार्च 1966, अजमेर।

दो मित्र चार-पाँच वर्ष के बाद एक-दूसरे से मिले और परस्पर खबर पूछने लगे। एक मित्र ने दुःखी आवाज में कहाः

"मेरे पास एक सुन्दर बड़ा घर था। दस बीघा जमीन थी। दस-बारह बैल थे। गायें थीं, पाँच बछड़े भी थे परन्तु मैंने वह सब खो दिया। मेरी पत्नी और मेरे बालक भी मर गये। मेरे पास केवल ये पहने हुए कपड़े ही रह गये हैं।"

यह सुनकर उसका मित्र हँसने लगा। उसको हँसता हुआ देखकर इसको गुस्सा आया। वह बोलाः

"त मेरा जिगरी दोस्त है। मेरी इस दशा पर तुझे दुःख नहीं होता और ऊपर से मजाक करता है? तुझे तो मेरी हालत देखकर दुःखी होना चाहिए।"

मित्र ने कहाः "हाँ....'तेरी बात सच्ची है। परन्तु अब मेरी बात भी सुनः मेरे पास पैंसठ बीघा जमीन थी। लगभग तीस मकान थे। मैंने शादी की तो 21 बालक हुए। लगभग तीस बैल और गायें थीं। सिंध नेशनल बैंक में पाँच लाख रुपये थे। मैंने वह सब खो दिया। मैंने अपनी परिस्थिति का स्मरण किया तो मेरी तुलना में तेरा दुःख तो कुछ भी नहीं है। इसलिए मुझे हँसी आ गयी।"

विचार करें तो संसार और संसार के नश्वर भोग-पदार्थों में सच्चा सुख नहीं है। यह सब आज है और कल नहीं। सब परिवर्तनशील है, नाशवान है।

एक सेठ प्रतिदिन साधु संतों को भोजन कराता था। एक बार एक नवयुवक संन्यासी उसके यहाँ भिक्षा के लिए आया। सेठ का वैभव-विलास देखकर वह खूब प्रभावित हुआ और विचारने लगाः

'संत तो कहते हैं कि संसार दुःखालय है, परन्तु यहाँ इस सेठ के पास कितने सारे सोने-चाँदी के बर्तन हैं ! सुख के सभी साधन हैं ! यह बहुत सुखी लगता है।' ऐसा मानकर उसने सेठ से पूछाः

"सेठजी ! आप तो बहुत सुखी लगते हैं। मैं मानता हूँ कि आपको कोई दुःख नहीं होगा।"

सेठजी की आँखों में से टप-टप आँसू टपकने लगे। सेठ ने जवाब दियाः "मेरे पास धन-दौलत तो बहुत है परन्तु मुझे एक भी सन्तान नहीं है। इस बात का दुःख है।"

संसार में गरीब हो या अमीर, प्रत्येक को कुछ न कुछ दुःख अथवा मुसीबत होती है। किसी को पत्नी से दुःख होता है तो किसी की पत्नी नहीं है इसलिए दुःख होता है। किसी को सन्तान से दुःख होता है तो किसी की सन्तान नहीं होती है इस बात का दुःख होता है। किसी को नौकरी से दुःख होता है तो किसी को नौकरी नहीं है इस बात का दुःख होता है।

कोई कुटुम्ब से दुःखी होता है तो किसी का कुटुम्ब नहीं है इस बात का दुःख होता है। किसी को धन से दुःख होता है तो किसी को धन नहीं है इस बात का दुःख होता है। इस प्रकार किसी-न-किसी कारण से सभी दुःखी होते हैं।

नानक ! दुखिया सब संसार....

तुम्हें यदि सदा के लिए परम सुखी होना है तो तमाम सुख-दुःख के साक्षी बनो। तुम अमर आत्मा हो, आनन्दस्वरूप हो.... ऐसा चिन्तन करो। तुम शरीर नहीं हो। सुख-दुःख मन को होता है। राग-द्वेष बुद्धि को होता है। भूख-प्यास प्राणों को लगती है। प्रारब्धवश जिन्दगी में कोई दुःख आये तो ऐसा समझो कि मेरे कर्म कट रहे हैं.... मैं शुद्ध हो रहा हूँ।

एक बार लक्ष्मण ने भगवान श्री राम से कहाः "कैकेयी को मजा चखाना चाहिए।"

भगवान श्री राम ने लक्ष्मण को रोका और कहाः

"कैकेयी तो मुझे मेरी माता कौशल्या से भी ज्यादा प्रेम करती है। उस बेचारी का क्या दोष? सभी कुछ प्रारब्ध के वश में है। केकेयी माता यदि ऐसा न करती तो बनवास कौन जाता और राक्षसों को कौन मारता? याद रखो कि कोई किसी का कुछ नहीं करता।

नाच नचे संसार मति, मन के भाई सुभाई।
होवनहार न मिटे कस, तोड़े यत्न कोढ़ कमाई।।

जो समय बीत गया वह बीत गया। जो समय बाकी रहा है उसका सदुपयोग करो। दुर्लभ योनि बार-बार नहीं मिलती इसलिए आज से ही मन में दृढ़ निश्चय करो कि 'मैं सत्पुरुषों का संग

करके, सत्शास्त्रों का अध्ययन करके, विवेक और वैराग्य का आश्रय लेकर, अपने कर्त्तव्यों का पालन करके इस मनुष्य जन्म में ही मोक्ष पद की प्राप्ति करूँगा.... सच्चे सुख का अनुभव करुँगा।' इस संकल्प को कभी-कभार दोहराते रहने से दृढ़ता बढ़ेगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आध्यात्मिक मार्ग पर कैसे चलूँ?

आगरा।

एक जिज्ञासु ने पूछाः "महाराज ! ईश्वर की तरफ जाने की इच्छा तो बहुत होती है परन्तु मन साथ नहीं देता। क्या करूँ?"

पूज्य बापू ने कहाः "मुक्ति की इच्छा कर लो।"

जिज्ञासुः "परन्तु इच्छा-वासनाएँ मिटती नहीं हैं।"

तब पूज्य बापू ने जवाब दियाः

"इच्छा-वासनाएँ नहीं मिटती हैं तो उसकी चिन्ता मत करो। उसके बदले ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा करो। रोज जोर-जोर से बोलकर दृढ़ संकल्प करो कि "मुझे इसी जन्म में राजा जनक की तरह आत्मा का अनुभव करना है।" जिस प्रकार देवव्रत (भीष्म पितामह) ने जोर से बोलकर संकल्प किया था किः

'हे गन्धर्व ! सुन लें। हे देवता लोग ! सुन लें। हे यक्ष और किन्नर ! सुन लें। हे राक्षस ! सुन लें। मैं शान्तुनपुत्र देवव्रत प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करूँगा.... मैं विवाह नहीं करूँगा..... नहीं करूँगा..... नहीं करूँगा....'

इस प्रकार तुम एकान्त कक्ष में बैठकर अपने शुभ संकल्प को जोर से दोहराओः 'मैं इसी जन्म में आत्मा में स्थिति प्राप्त करूँगा.... मैं इसी जन्म में राग-द्वेष से मुक्त हो जाऊँगा। मैं अमुक का पुत्र, अमुक गुरु का शिष्य.... जैसा बाप वैसा बेटा..... इसी जन्म में आत्म-साक्षात्कार करूँगा....' इस प्रकार बारंबार शुभ संकल्पों को दोहराओ।

जिन्दगी में दूसरा कोई आग्रह न रखो। नव ग्रहों से भी आग्रह ज्यादा खतरनाक है। शरीर की तन्दुरुस्ती और मन की पवित्रता का ख्याल रखकर जो भी सादा या स्वादिष्ट मिल जाये उसे खा लिया, पी लिया, ओढ़ लिया.... परन्तु 'ऐसा ही कहिए.... वैसा हो चाहिए.... ऐसा ही होना चाहिए... वैसा ही होना चाहिए....' ऐसा आग्रह मत रखो। इच्छा पूरी न होने पर ऐसा आग्रह हृदय में कलह और अशान्ति पैदा करता है। साथ ही साथ मन-बुद्धि में आसक्ति, अहंकार, राग और द्वेष भी भर देता है। यह आग्रह ही तो चौरासी लाख जन्मों में धकेल देता है। अतः कोई भी आग्रह मत रखो। छोटे-बड़े सभी आग्रहों को निकालने के लिए केवल एक ही आग्रह रखो कि 'कुछ भी हो

जाये, इसी जन्म में भगवान के आनन्द को, भगवान के ज्ञान को और भगवद्-शान्ति को प्राप्त करके मुक्त आत्मा होकर रहूँगा।'

इस प्रकार मन को दुराग्रह से छुड़ाकर केवल परमात्म-प्राप्ति का ही आग्रह रखोगे तो मार्ग सरल हो जायेगा।

मैं आत्मा हूँ ऐसी भावना हमेशा करो। जिस प्रकार कोई करोड़पति 'मैं कंगाल हूँ...' ऐसी दृढ़ भावना करेगा तो अपने को कंगाल ही मानेगा, परन्तु मैं 'करोड़पति हूँ' ऐसा भाव करेगा तो अपने को करोड़पति मानेगा। इसी प्रकार 'मैं आत्मा हूँ' ऐसी भावना करो। रोज सुबह एकान्त कक्ष में 'मैं ब्रह्म हूँ.... अमर हूँ... चैतन्य हूँ... मुक्त हूँ.... सत्यस्वरूप हूँ.....' ऐसा शुभ संकल्प करो परन्तु 'मैं मारवाड़ी हूँ... सिन्धी हूँ.... गुजराती हूँ.... पंजाबी हूँ.... सुखी हूँ.... दःखी हूँ...' ऐसी झूठी भावना मत करना। ऐसी झूठी भावना करने से सुखी होने के बदले दुःखी और अशांत ही होगे। ऐसे मिथ्या संस्कार तुम्हें जन्म-मरण के चक्र में डाल देंगे।

तुम इस जन्म में सुख और शान्ति पाने के उपाय ढूँढो और सोचो कि अब क्या करना चाहिए? ऐसा नहीं कि तुम किसी साधु-संत के पास जाकर कहो किः 'साँई ! मेरी पत्नी का स्वभाव बदल डालो।'

अरे भाई ! तू अपना ही स्वभाव बदल, अपनी समझ सुधार ले। पत्नी का स्वभाव बदलेगा तो फिर कहोगे कि 'बेटे का स्वभाव बदलो... विरोधी का स्वभाव बदलो....' तू अपना ही स्वभाव क्यों नहीं बदलता? उन लोगों में से अपनी आसक्ति क्यों नहीं खींच लेता? उल्टे फँस मरने की माँग करता है?

'ऐसा हो जाए तो अच्छा.... वैसा मिल जाए तो अच्छा....' इसकी अपेक्षा तो तू जहाँ है वहीं से मुक्त स्वभाव की ओर चल। अपनी बेवकूफी तो छोड़नी नहीं है और दुःख मिटाना चाहता हो?

अपनी बेवकूफी क्या है? अपनी कल्पना के अनुसार संसार को, पत्नी को, पति को, बेटे को, मित्र को, नौकर को बदलकर सुखी होने की जो माँग है, वही बेवकूफी है। वास्तव में, ऐसा करने से कोई भी सुखी नहीं हुआ है। सुखी तो तभी हुआ जा सकता है जब अपने ब्रह्मत्व की, अपने सत्यस्वरूप की स्मृति दृढ़ कर लो।

इस प्रकार मन में शुभ एवं सत्य संकल्पों को रोज-रोज दोहराने से, तुम्हारी इच्छा-वासनारूपी दुराग्रहों को छोड़ने से और तुम्हारे निज स्वरूप का स्मरण करने से तुम्हारा आध्यात्मिक पथ सरल हो जायेगा।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्मधन है ही ऐसा.....

मुंबई।

पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू किसी भक्त के घर सत्संग कर रहे थे। उस समय पूज्य स्वामी जी ने सत्संगियों से पूछाः

"तुम कौन हो और क्या-क्या करते हो?"

तब सबने अपना-अपना परिचय देते हुए कहाः "मैं वकील हूँ... मैं डॉक्टर हूँ... मैं इंजीनियर हूँ.... मैं व्यापारी हूँ.... मैं उद्योगपति हूँ.... मैं जज हूँ...." आदि आदि। सबको सुन लेने के बाद पूज्य स्वामी जी ने कहाः "भाई ! तुम लोग तो डॉक्टर, वकील, व्यापारी, आफिसर, इंजीनियर, जज आदि पता नहीं कौन-कौन-सी बड़ी-बड़ी पदवीवाले हो। फिर भी तुम सब मेरे आगे घास काटते हो। बोलो, घास काटते हो कि नहीं?"

सबने पूज्य स्वामीजी की बात से सहमत होकर कहाः

"जी साँई।"

"हाँ, तुम सब तो भाँति-भाँति के पद और उपाधियाँ लेकर बैठे हो फिर भी अशान्त और असन्तुष्ट हो, परन्तु विचार करो कि यह सब पाने के बाद भी आखिर क्या है? यह सब शरीर की सुख-सुविधाओं के लिए है किन्तु आज तक किसी का शरीर सदैव नहीं रहा है। ये सब उपाधियाँ और पद, मान और प्रतिष्ठा सब शरीर के साथ छूट जायेंगी। आनेवाले जन्म में इनमें से कुछ भी साथ नहीं आयेगा। ब्रह्मज्ञान के आगे धन, रूप, एवं ऐहिक विद्या की कोई कीमत नहीं है। आत्मतत्त्व की साधना के बिना यह सब व्यर्थ है। मैं तो कुछ भी नहीं पढ़ा हूँ फिर भी बादशाह हूँ। बोलो, हूँ कि नहीं?"

पूज्य स्वामी जी की बात में सच्चाई थी अतः कौन 'ना' कह सकता था?

"जी स्वामी जी ! आप तो बादशाह हैं।"

यह सुनकर पूज्य स्वामीजी जोर से हँस पड़े और इसके साथ दूसरे लोग भी हँस पड़े। हँसना बन्द होते ही पूज्य स्वामी जी ने कहाः "क्या करें भाई ! आत्मधन है ही ऐसा। यह जिसे मिल जाता है उसे सब मिल जाता है। उसके आनन्द के आगे इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद भी फीका लगता है। जिसे यह आत्मधन नहीं मिला उसे संसार के अन्य ऐश्वर्य और धन-सम्पत्ति भी मिल जाये तो भी न मिले हुए जैसे ही होते हैं क्योंकि मृत्यु के एक झटके में यह सब छूट जाता है। तुम्हें यदि कुछ पाना ही हो तो इस आत्मपद को पाओ, आत्म-साक्षात्कार करो। अतः ऐसे नश्वर खिलौनों से राजी नहीं होना है। व्यवहार के लिए यह सब ठीक है, परन्तु सच्ची शांति और आनन्द तो अपने स्वरूप को जानने से ही मिलता है। परन्तु... मन बहुत बेईमान है। वह हमें वहाँ तक जाने नहीं देता। अतः खूब सत्संग करो, साधु-संग करो और सत्शास्त्रों का अध्ययन करो।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संतों के रहस्यमय आशीर्वाद

गणेषपुरी, मुंबई।

एक बार पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू एक भक्त के बंगले में एकान्तवास कर रहे थे। एक दिन एक श्रद्धालु कुटुम्ब एक नवदम्पत्ती को लेकर पूज्यश्री के दर्शन करने एवं आशीर्वाद लेने के लिए आया। दूल्हे के माता-पिता ने पूज्य स्वामी जी से प्रार्थना कीः

"स्वामीजी ! इन लोगों ने नई-नई शादी की है। इन्हें आशीर्वाद दो कि इन लोगों का दाम्पत्य जीवन सुखी हो एवं एक-दूसरे के प्रति दोनों का प्रेम खूब बढ़े।"

पूज्य स्वामीजी ने तुरन्त ही कहाः

"ये आशीर्वाद थोड़े ही हैं। आशीर्वाद तो मैं ऐसा देता हूँ कि पत्नी या झगड़ालू मिले या कुरुप, जिससे एक-दूसरे में मोह न हो। ऐसा होगा तभी दूल्हे का कल्याण होगा। नहीं तो सत्यानाश होगा।'

सुथरा नाम के एक उच्च कोटि के संत हो गए। एक बार वे किसी मंदिर में बैठे थे। उस समय मंदिर के पुजारी के पास वर-कन्या आशीर्वाद लेने के लिए आये। मंदिर के पुजारी ने दक्षिणा ली एवं वर-कन्या को आशीर्वाद दियेः

"जुग जुग जियो... जुग जुग जियो।"

वर-कन्या के साथ आये हुए दूसरे कुटुम्बियों ने भी पुजारी को प्रणाम किया। उन लोगों को भी पुजारी ने ऐसे ही आशीर्वाद दियेः

"जुग जुग जियो... जुग जुग जियो।"

फिर, जहाँ ब्रह्मज्ञानी संत सुथरा बाबा बैठे थे उनके पास जाकर मिठाई की पेटी रखने के लिए पुजारी ने उन लोगों को कहा और उनके आशीर्वाद लेने के लिए प्रेरणा दी। वे लोग सुथरा बाबा के पास गये। पहले दूल्हे ने पैर छूकर आशीर्वाद माँगे तो संत ने कहाः

"तू मर जायेगा।"

फिर कन्या ने प्रणाम किये तो कहाः

"तू भी मर जायेगी।"

उन लोगों के माँ-बाप ने प्रणाम किये तो कहाः

"तुम लोग भी मर जाओगे।"

माँ-बाप तुरन्त ही घबराकर बोलेः "महाराज ! आप यह क्या कहते हैं ! उन पुजारी ने तो जुग-जुग जीने का आशीर्वाद दिया और आपने हमें मर जाने का आशीर्वाद दिया। ऐसा क्यों?"

सुथरा बाबा बोलेः

"झूठ बोलने का काम मुल्ला-मौलवियों एवं पंडित-पुजारियों का है। हम तो सच्ची बात बताते हैं कि सबकी मृत्यु अनिवार्य है। तुम लोग कभी-न-कभी मर जाओगे इसलिए सावधानी से

जियो। 'जुग जुग जियो' का आशीर्वाद देने वाले खुद ही जुग जुग जीनेवाले नहीं हैं तो तुम क्या जुग जुग जियोगे?"

हमेशा विवेक से जियो। विवेक से विचारो कि कब तक जियेंगे। विवेक होगा तो वैराग्य आयेगा। वैराग्य के कारण मोक्ष पाने की इच्छा होगी। मुफ्त के 'जुग जुग जियो' के आशीर्वाद से कुछ नहीं होगा। मनुष्य का जीवन भोग-विलास के लिए नहीं है। प्रत्येक मनुष्य को हमेशा अपनी मुक्ति के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। संसार के बन्धनों एवं विषय-विकारों के बन्धनों से छूटने का यत्न करना चाहिए। जैसी भावना करोगे वैसा यत्न करोगे। जैसा यत्न करोगे वैसा संग मिलेगा। जैसा संग मिलेगा वैसा रंग लगेगा और जैसा रंग लगेगा वैसा भविष्य बनेगा। अतः ईश्वर एवं मृत्यु को कभी भी भूलना नहीं चाहिए वरन् सावधान रहना चाहिए।

हरि सम जग कछु वस्तु नहीं, मोक्ष पंथ सम पंथ।
सदगुरु सम सज्जन नहीं, गीता सम नहीं ग्रंथ।।

सच्चे संत-महात्मा ही लोगों को कड़वा सत्य बता सकते हैं और जीवन जीने का सच्चा रास्ता बताते हैं। सच्चे अर्थों में वे महापुरुष ही समाज के सच्चे हितैषी हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्संग-कणिकाएँ

सच्चे प्रेम से संत-महात्माओं की सेवा करनी चाहिए। अन्तःकरण में कोई स्वार्थ नहीं रखना चाहिए और उनके पास से कुछ लेना भी नहीं चाहिए। संत यदि प्रसन्न होकर कुछ माँगने के लिए कहें तो कहोः

"मुझे सच्चा प्रेम और विश्वास दो जिससे मैं न आपको भूलूँ न आप मुझे भूलें।"

किसी भी नश्वर वस्तु में आसक्ति रखोगे तो दुःखी होगे... खूब दुःखी होगे। आसक्ति अपने ज्योतिस्वरूप आत्मा में ही रखो। उससे ही प्रेमपूर्वक मिलकर एक हो जाओ।

पहली है आत्मकृपा अर्थात् अपने ऊपर ही कृपा करना। जहाँ दृढ़ संकल्प होता है वहाँ सफलता अवश्य मिलती है।

जिज्ञासु को दृढ़ निश्चय करना चाहिए कि मैं मोक्ष अवश्य पाऊँगा। बस, इसी इच्छा को दृढ़ करो। आत्मचिन्तन से इसमें धीरे-धीरे दृढ़ स्थिति बनती है। मन की दौड़ तो आनन्द एवं मोक्ष के लिए ही है। यदि आनन्द और मोक्ष न हो तो मन उसकी इच्छा ही न करे। इसलिए मेरे प्यारे ! जो मोक्ष की इच्छा करता है उसे मोक्ष अवश्य मिलता है। सत्य तो केवल पूर्ण आनन्द ही है जो तुम्हारा आत्मदेव बनकर अन्दर बैठा है।

हमेशा परिपूर्ण परमात्मा को ही दल में याद करते रहो। कभी-भी उस सच्चिदानन्द को दिल से न भूलो। 'याद' शब्द को उलटकर पढ़ोगे तो दया बनेगा। तम परमात्मा को याद करोगे तो उस उदारदाता की दयादृष्टि स्वयं ही तुम्हारे पर होगी। बिजली का बटन दबाते ही क्या होता है? अंधकार का तत्काल नाश। उसी प्रकार परमात्मा को याद करते ही प्रकाश-ही-प्रकाश नजर आयेगा। तुम्हारे हृदय में भी समझस्वरूप प्रकाश प्रकट हो जायेगा और अज्ञानरूपी अंधकार का नाश हो जायेगा।

चिन्ता को कभी मन-मन्दिर में प्रवेश न करने दो। चिन्ता और चिता दोनों शब्द वैसे तो एक जैसे लगते हैं, परन्तु दोनों में जमीन आसमान का अंतर हैं। चिता शव को जलाकर भस्म कर देती है जबकि चिन्ता तो जीवित मनुष्य को ही जलाकर मृतःप्रायः कर देती है। चिता तो एक बार ही मुर्दे को जलाती है परन्तु चिन्ता तो हमेशा कलेजे को खाती रहती है। चिन्तावाला मनुष्य कुछ नहीं समझता। चिन्ता करने से क्या लाभ मिलता है? चिन्ता से नाहक अपना ही नुकसान होता है। क्योंकि चिन्ता करने से होनेवाला तो कुछ भी नहीं है।

जिसने मन को जीता उसने जगत को जीता। जिसने मन को अपना दास बनाया है वही मोक्ष का अधिकारी है। जो जीवनमुक्त नहीं है वह विदेहमुक्त भी नहीं हो सकता। जब भगवान के नाम की दौ सौ मालाएँ करनी होती हैं तब उसकी जगह पर मन अगर केवल सौ मालाएँ करके छोड़ देता है तो समझ लेना चाहिए कि मन अब चंचल हुआ है। यदि मन पूरी दो सौ मालाएँ करे तो जानना कि वह स्थिर हुआ है। इस मन की मदद से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

शुभ कार्य करने में विलम्ब न करो। अपने स्वभाव को सुन्दर बनाओ।

व्यर्थ वाद-विवाद न करो। ज्यादा बोलना उचित नहीं। **वाद-विवाद काहु से ना कीजिए, रसना राम अमृत रस पीजिए।**

घी ज्यादा खाओगे तो अजीर्ण हो जायेगा। बारिश ज्यादा होगी तो भी नुकसान होगा। दिया जलता है तब तेल और बाती दोनों का नाश होता रहता है। उसी प्रकार जितना बोलते रहते हो उससे आन्तरिक शक्ति का नाश होता रहता है। इसलिए महात्मा गाँधी भी हर सोमवार को मौन रखते थे।

मेरे प्यारे ! आत्मा तो सदा अजर, अमर, अविनाशी और आनन्दस्वरूप है तो फिर शोक किसका?

अज्ञान ही मनुष्य को भटकाता है। पदार्थों में सुख नहीं है परन्तु इच्छा-वासना की निवृत्ति में ही सुख है।

राक्षस से भी भयानक क्रोध है क्योंकि राक्षस तो दूसरे का खून पीता है जबकि क्रोध के आवेश में आया हुआ व्यक्ति दूसरे का एवं स्वयं का भी खून पीता है। राक्षस तो केवल रात को ही अपने काम में लगता है जबकि क्रोधी तो रात-दिन व्याकुल रहता है। राक्षस हमेशा दूसरों को

डराता है जबकि क्रोधी खुद भी डरता है और दूसरे को भय से कम्पायमान कर देता है। अतः जहाँ तक बने वहाँ तक क्रोध को मन के अन्दर जगह ही नहीं देनी चाहिए।

योग उपासना और निष्काम कर्म मन को शुद्ध और पवित्र बनाते हैं। आत्मज्ञान अन्दर का अन्धकार मिटाकर ज्ञान का प्रकाश फैलाता है।

तुम समय निकालकर भगवन्नाम का जप करो, भगवद् चिन्तन करो और बाकी का समय परहित में लगाओ। ऐसा करने से मन-मंदिर में ज्ञान की ज्योत प्रगट होगी।

हरिनाम-स्मरण के सिवाय एक क्षण भी न बिताओ।

जैसे-जैसे मनुष्य दुःख सहन करता है वैसे-वैसे आगे जाकर वह भूलों से दूर रहना सीखता है।

विद्यार्थियों को अपने चरित्र पर खास ध्यान देना चाहिए। धन गया तो कुछ नहीं गया। स्वास्थ्य गया तो कुछ-कुछ गया, परन्तु चरित्र का नाश हुआ तो सब कुछ नष्ट हो गया। इसलिए बनाने जैसा और सँभालने जैसा तो मात्र चरित्र ही है। सिनेमा से चरित्र बिगड़ता है। सिनेमा बन्द होंगे तो राम राज्य आयेगा।

पूरा जगत सुधर जाये किन्तु जब तक हम नहीं सुधरे तब तक कुछ नहीं हुआ। इसलिए हमेशा सदा अपना ही ध्यान रखो। हमेशा सुबह उठते ही परिपूर्ण परमात्मा से प्रार्थना करोः

'हे दयालु प्रभु ! मेरे पर दया करो। जिस प्रकार मुझे दूसरों के दोष दिखते हैं उसी प्रकार मेरे दोष भी मुझे दिखें और दूसरों के केवल गुण ही दिखें। दूसरों की बुराई पर मेरी नजर तक न पड़े। मैं हमेशा गुणग्राही बनूँ। कवि 'सामी' ने कहा है कि जिसने गुरु के ज्ञान से अपने अन्दर के दर्पण को शुद्ध किया है, जिसे आत्मदेव के दर्शन हुए हैं, अन्दर-बाहर के तत्त्व का अनुभव किया है, जो अपने सिवाय दूसरा कुछ नहीं देखता ऐसे महापुरुषों का कार्य सिद्ध हो गया।'

भगवान के प्रति हमारा सच्चा प्रेम तभी टिक सकता है कि जब हमारी बुद्धि पवित्र, निर्मल और स्वच्छ होती है।

स्वर्ग की प्राप्ति किस प्रकार हो? सुना तो है कि स्वर्ग भोग-भोगने से प्राप्त नहीं होता। भोग-भोगने के लिए हमें मनुष्य जन्म नहीं मिला, परन्तु जीवन में कुछ विशेष बनने और करने के लिए मिला है। यह योनि देवताओं से भी ऊँची है क्योंकि इस मनुष्य योनि में हम सत्कर्म कर सकते हैं। सचमुच कौन-से कर्म करने जैसे हैं? परहित के, भलाई के काम करो। मन को शुद्ध रखो और ईश्वर की भक्ति करो। मन पर लगातार सख्त पहरा रखो। बुरे संकल्पों से छुटकारा पाओ। फिर देखोगे कि यहीं स्वर्ग बन जायेगा। अगर नर्क चाहिए तो बुरे कर्म करो।

मृत्यु को निरन्तर नजर के सामने रखो, याद करो। प्रश्न होगा कि मौत को याद करने से क्या फायदा? ऐसा करने से तम कभी भी मोह के पाश में नहीं फँसोगे, न ही किसी के साथ वैरवृत्ति या विरोध होगा और घर धर्मशाला जैसा लगेगा।

मौत अपनी याद कर ले ताहि भुलायो ना कभी।

जान मन में मरण का दिन, निकट आया है अभी।।

मान लो कि कोई त्रिकालज्ञानी संत किसी व्यक्ति से कह दें- "आनेवाले बुधवार की रात्रि के 8 बजे तेरी मृत्यु होने वाली है' तो फिर क्या उसे खाना-पीना स्वादिष्ट लगेगा? क्या उसे धन कमाना या बढ़ाना याद आयेगा? कभी नही।

सुबह और शाम को नियमित आसन, प्राणायाम और व्यायाम करने का नियम रखो।

वस्त्र-परिधान का प्रभाव शरीर और मन पर पड़ता है। सादे, स्वच्छ और सूती कपड़े पहनो। लाल रंग क्रोध जगाता है। खाकी रंग स्वार्थी बनाता है। श्वेत रंग शान्ति, पीला रंग प्रभुप्रीति और नीला रंग प्रेम और उदारता बढ़ाता है। ऐसे ही रंग घर, ऑफिस एवं वस्त्रों के लिए पसंद करना चाहिए।

मन को वश में रखने के लिए मौन धारण करने से खूब लाभ होता है। मन को स्थिर करने में मौन की बड़ी सहायता है।

प्रत्येक मनुष्य को आनन्द प्राप्ति की इच्छा है। आनन्द पाना चाहते हो तो पापों से बचो। पाप और दुर्बलता चली जायेगी तो कभी भी दुःखी नहीं होगे।

पशु और देवता की योनि की अपेक्षा मनुष्य की योनि श्रेष्ठ कही गई है क्योंकि मनुष्य जन्म ही भोग-क्षेत्र और कर्म-क्षेत्र दोनों बनता है।

अपने पूर्व जन्म के पाप-पुण्यों से ही सुख-दुःख मिलता है परन्तु भविष्य बनाने के लिए कर्म करने में हम स्वतन्त्र हैं।

विकार मनुष्य का शत्रु है। जो मनुष्य खराब संग और विकार का गुलाम है वह अपना ही भला नहीं कर सकता तो फिर दूसरों का भला कैसे कर सकेगा?

जो देह, मन और इन्द्रियों पर संयम रखेगा उसे सच्चा आनन्द प्राप्त होगा।

याद रखो कि पुरुष अथवा स्त्री, त्यागी अथवा गृहस्थी अपने-अपने कर्त्तव्य-पालन से ही सदगति पाते हैं।

यदि तुम चाहते हो कि 'मैं सदा प्रसन्न रहूँ और मन भी कभी चंचल न बने' तो फिर यह एक विचित्र मंत्र याद रखोः 'यह भी गुजर जायेगा।'

हमेशा सोच-विचार बोलना चाहिए, अन्यथा शान्त रहना चाहिए। बुद्धिमान मनुष्य बोलने के पहले विचारते हैं।

दूसरे को सुख देने की भावना रखोगे तो तुम्हें सुख मिलेगा। लेना छोड़ो। देना सीखो। दुःख आये तो सहन करना सीखो।

दुःख में दुःखी होओगे तो दुःख बढ़ जायेगा। सुख आये तो समझो कि मैंने दूसरे को सुख दिया है उसका परिणाम है। अतः सुख चाहते हो तो सुख बाँटते रहो। सुख भोगोगे तो दुःखी होगे।

सौ मन दूध में विष की एक बूँद भी सौ मन दूध को बिगाड़ने के लिए पर्याप्त है। उसी प्रकार विकार को समझो। विकार चाहे कितना भी छोटा हो, वह जीवन को बिगाड़ देगा। विकार को साँप के जहर से भी ज्यादा भयानक समझो।

धन, कुटुम्ब आदि पर जो तुम गर्व कर रहे हो कि वे तुम्हारे हैं, वे तुम्हें छोड़ जायेंगे या तो तुम उन्हें छोड़ जाओगे। गर्व करने में कोई सार नहीं। गर्व करना ही हो तो अपने अमर आत्मा-परमात्मा का करो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के मधुर संस्मरण

मेरे गुरुदेव

चाहे जितने कर्म करो, चाहे जितनी उपासना करो, चाहे जितने व्रत-अनुष्ठान करो, चाहे जितना धन इकट्ठा करो और चाहे जितना दुनिया का राज्य भोगो किन्तु जब तक सदगुरु के दिल का राज्य तुम्हारे दिल तक नहीं पहुँचता, जब तक सदगुरु के दिल का खजाना तुम्हारे दिल में नहीं उँडेला जाता, जब तक तुम्हारा दिल सदगुरु के दिल को झेलने योग्य नहीं बनता, तब तक सभी कर्म, उपासना एवं पूजा अधूरी हैं। देवी-देवताओं की पूजा करने के बाद भी कुछ करना बाकी रहता है, किंतु सदगुरु की पूजा के बाद फिर कोई पूजा बाकी नहीं रहती।

एक संत कवि ने सदगुरु की महिमा को समझाते हुए गाया हैः

हरिहर आदिक जगत में पूज्य देव जो कोय।
सदगुरु की पूजा किये सबकी पूजा होय।।

गुरुपूजा एवं गुरुमहिमा को केवल अपने सनातन वैदिक धर्म में ही स्वीकार किया गया है ऐसी बात नहीं है। अन्य सभी धर्मों, मतों, पंथों जैसे कि सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध वगैरह में भी गुरुमहिमा को दर्शाया गया है। प्रेम, दया, मानवता जैसे तत्त्व सभी मत-पंथों में सनातन हैं, इसी प्रकार गुरुमहिमा भी सभी धर्मों में समान एवं सनातन है। श्रीमद् आद्य शंकराचार्य ने तो यहाँ तक कहा हैः

षडंगादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोंघ्रिपद्मे।
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।

"वेद एवं षट्वेदांगादि शास्त्र जिन्हें कंठस्थ हों, जिनमें सुन्दर काव्य-निर्माण की प्रतिभा हो, किन्तु उनका मन यदि गुरु के श्रीचरणों के प्रति आसक्त न हो तो इन सदगुणों से क्या लाभ?"

सर्व संपत्ति, भोग, विद्या, तप, गौरव वगैरह सब मिल जाये अथवा पूर्ण विरक्ति भी मिल जाये परंतु गुरु-चरणकमल में श्रद्धापूर्वक चित्त न लगाया तो दूसरा सब मिला हुआ व्यर्थ है।

गुरु-शिष्य के अमर संबंध का रसास्वाद वही पा सकता है जिसके हृदय में गुरुप्रेम ने निवास किया है, गुरुभक्ति ने घर किया है। चंद्र के दर्शन का सुख चकोर ही जानता है, दीपक रूप का सुख पतंग ही जानता है, पानी में रहने में क्या सुख है वह मछली ही जानती है। उसी प्रकार गुरुदेव के दर्शन, स्पर्श, पूजन-अर्चन का क्या महत्त्व है यह रहस्य गुरुभक्त ही जानता है। 'श्रीगुरुगीता' भगवान शिव 'गुरु' शब्द का अर्थ समझाते हुए कहते हैं-

गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः।।

'गु' अर्थात् अंधकार (अज्ञान) एवं 'रू' अर्थात् प्रकाश (ज्ञान)। अज्ञान को नष्ट करने वाला जो ब्रह्मरूप प्रकाश है, वह गुरु है, इसमें संशय नहीं है।'

गुरु पूर्ण हैं। गुरु शिष्य के अंतःकरण के अंधकार को दूर करते हैं। आत्मज्ञान की युक्तियाँ बताते हैं। गुरु प्रत्येक शिष्य के अन्तःकरण में निवास करते हैं। गुरु वह जगमगाती ज्योति है जो शिष्य की बुझी हुई ज्ञानज्योति को प्रगटाती है।

गुरु बादल की तरह ज्ञानवर्षा करके शिष्य को ज्ञानरस में सराबोर करते हैं। शिष्य की योग्यता एवं गुरु की कृपा का सम्मिलन ही मोक्ष का द्वार है। इस दुःखालय संसार में गुरुकृपा ही ऐसा अमूल्य खजाना है जो मनुष्य को आवागमन के विकट चक्र में से, विकराल काल कराल के चक्र में से मुक्ति दिलाता है।

'अपने गुरुदेव पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के लिए मैं क्या कहूँ? सचमुच, मेरा हृदय भावविभोर हो उठता है। ऐसे पहुँचे हुए महापुरुष की महिमा का वर्णन किये बिना रहा भी कैसे जा सकता है?

मैं तीन वर्ष का था तभी से भगवान के भजन ऐसे ही गुनगुनाता था। पाँच वर्ष का हुआ तब झुलेलाल को रिझाता था क्योंकि मेरा जन्म सिंधी जाति में हुआ था। कुछ वर्ष तक ऐसा किया, फिर भी लगता था कि कोई पूजा बाकी रह जाती है।

फिर पहुँचा पीपल देवता के पास। 'पीपल में भगवान हैं' इस भाव से पीपल के आगे भोजन धरता, आलिंगन करता, उसकी जड़ को भगवान के चरण मानकर दबाता। यह सब किया... फिर माँ काली की आराधना की, श्री कृष्ण को रिझाया, शिवजी को रिझाया... न जाने कितनों-कितनों को रिझाया? 21 वर्ष तक ऐसा सब करता रहा। अनजाने में थोड़े चमत्कार भी होते। कई ऋद्धि-सिद्धियाँ भी हासिल कीं, फिर भी कुछ बाकी रहता था।

घूमते-घामते मैं वृंदावन गया। वहाँ भी श्रीकृष्ण की मूर्ति मिली, श्रीकृष्ण न मिले। रणछोड़राय के दर्शन करने गया तो पुजारियों की भीड़ मिली। केदारनाथ गया तो केदारनाथजी की मूर्ति एवं पुजारियों का झुंड मिला। काशी गया पर विश्वनाथ की मुलाकात न हुई। जो-जो मंदिर दिखते वहाँ-वहाँ जाता पर देखता कि मंदिर के देव तो हैं, मूर्ति तो विद्यमान है परंतु मंदिर के देव कुछ बोलते नहीं हैं।

उसके बाद मौत का सामना करना पड़े ऐसे दुर्गम स्थलों पर जाकर उग्र साधनाएँ की। सभी कष्टदायक तितिक्षाओं के बाद अंत में भटकता-भटकता जब नैनिताल के जंगलों में विद्यमान पूज्यपाद सदगुरुदेव श्री लीलाशाहजी महाराज के श्रीचरणों में पहुँचा तब मानो, सभी तितिक्षाओं का, सभी साधनाओं का अंत आया। पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे मेरे घर में ही घर बता दिया। दिल में ही दिलबर के दीदार करवा दिये, परम तत्त्व का ज्ञान करवा दिया।

हम न हँसकर सीखे हैं न रोकर सीखे हैं।
जो कुछ भी सीखे हैं, सदगुरु के होकर सीखे हैं।।

सदगुरुदेव द्वारा प्राप्त हुए आध्यात्मिक खजाने के आगे त्रिलोकी का साम्राज्य भी तुच्छ है। सबसे पहले पूज्य सदगुरुदेव के दर्शन मुझे नैनिताल के जंगलों में हुए। उस समय तीस दिन तक उनके श्रीचरणों में रहकर उनके निकट से दर्शन करने का मौका मिला। उसके बाद कभी-कभार उनके पास जाता तब अलग-अलग जगहों पर, अलग-अलग प्रसंगो पर उनका व्यवहार, उनकी ज्ञाननिष्ठा, उनकी समझ, उनकी उदारता, उनकी सूक्ष्म एवं दीर्घ दृष्टि, उनके विनोद वगैरह का अनुभव कराने वाले अनेक अवसर मिले।

उनके मधुर नेत्रों से हमेशा प्रेम-अमृत बरसता था। लोगों के साथ के उनके व्यवहार में मुझे अखंड धैर्य, प्रसन्नता, अथाह सामर्थ्य, निश्चयबल एवं आत्मीयता जैसे दैवी गुणों के दर्शन हुए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

दृष्टि मात्र से निहाल कर दिया!

मेरे लीलाशाह भगवान तो गुरुओं के भी गुरु थे। एक दिन मुझे अनुभव हुआ कि महापुरुष यदि चाहें तो अपनी दृष्टि मात्र से किसी को भी अपनी आत्म मस्ती का स्वाद चखा सकते हैं। पूज्य गुरुदेव तो ईश्वरीय शक्ति का भरपूर सामर्थ्य वाले, महान् आध्यात्मिक विभूति थे।

नैनिताल में यह प्रसंग मैंने अपनी आँखों से देखा है।

एक बार एक गरीब, दुःखी युवक मेरे गुरुदेव के पास आया। उसने आकर रोते-रोते अपनी दुःखों से भरी करुण कहानी सुनाई एवं पूज्य गुरुदेव से मदद के लिए प्रार्थना की।

दयालु पूज्य गुरुदेव ने उसके सामने जरा-सा निहारा और एकाएक क्या जादू हो गया कि वह युवक तो गदगद होने लगा !

वह अपना दुःख दर्द एवं रोना भूल गया और बस आनंद.... आनंद... आनंद..... इतना उछले, इतना उछले कि बस..... शरीर के रोम-रोम में वह प्रसन्नता का अनुभव करने लगा। मैं तो नया-नया एवं पहली बार गया था। यह दृश्य देखकर ठगा-सा रह गया कि अरे ! यह क्या? पूज्य बापू ने केवल इस प्रकार उसकी ओर जरा सा देखा और वह....?

अब, वर्षों बीतने के बाद मुझे पता चला कि वह शांभवी दीक्षा थी। एक संत कवि ने गाया हैः

नूरानी नजर सां दिलबर दरवेशनि,
मूंखे निहाल करे छडियो....

'प्रेममयी दृष्टि से उन प्रेमी संत (गुरुदेव) ने मुझे निहाल कर दिया।'

वया जादू हणी मुंजे जीअ में जोगी
तिन सामिन खे त सम्भारियां पेइ।
करे याद उन्हन जी रहम्त खे
माँ सौ सौ गोड़हा गाड़यां पेइ।

साधिका कहती हैः 'उन जोगी ने मेरे दिल में ऐसा तो जादू कर दिया है कि उन्हें मैं अभी भी याद करती हूँ। उनकी कृपादृष्टि को याद करते ही मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बहती है।'

इस प्रकार पूज्य बापू की कृपादृष्टि से उस नवयुवान को उत्साह एवं नया जीवन मिला। उसकी सुषुप्त ईश्वरीय शक्ति जागृत हो गयी और वह निहाल हो उठा। पूज्य बापू का प्रेममय स्पर्श पाकर, अवर्णनीय आनंद से परिपूर्ण होकर जब वह घर की ओर वापस लौटा तब उसके पैर उत्साह से बढ़ रहे थे। उसका जीवन बाद में प्रभुमय बन गया।

आत्मखजाने के स्वामी मेरे गुरुदेव के पास असाधारण योग-सामर्थ्य था जिसके कारण अनेक पतित-पीड़ित लोगों का जीवन परिवर्तित हो जाता। उस सामर्थ्य के कारण अनेकों लोग विषय-वासनाओं के फंदे में से मुक्त बने। कइयों के पुराने असाध्य रोग दूर होकर नया जीवन प्राप्त हुआ। जिस आध्यात्मिक उन्नति के लिए वर्षों तक एकांत जंगलों में रहकर अनेक प्रकार की साधनाएँ करनी पड़ती थीं और योग्य मार्गदर्शक के अभाव में जीवन तक खो देने का समय आता था ऐसे उस अध्यात्ममार्ग के पूज्य श्री पूर्ण आचार्य थे। उनकी इस कृपादृष्टि का लाभ अनेक भक्तों ने लिया था।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गुरुदेव की डाँट भी कितनी कल्याणकारी!

मेरे सदगुरुदेव कदम-कदम पर अपने शिष्यों का कितना ख्याल रखते थे इस बात की ओर संकेत करने वाले ये दो प्रसंग मुंबई आश्रम एवं उपलेटा में बने थे। मेरे साधना-काल की ये बातें हैं।

मेरे गुरुदेव ने एक बार मुझे इतने जोर से डाँटा कि सुनने वाले भी भयभीत हो गये। किन्तु उस समय अगर ऐसी डाँट लगाकर मेरी घड़ाई न होती तो मैं आज कहीं भटक गया होता। यहाँ इस रूप में न होता। बाद में मैंने अपने-आपको धन्यवाद दिया कि जिन हाथों से हजारों-हजारों मीठे फल खाये उन्हीं हाथों का यह जरा खट्टा मीठा फल कितना सुंदर है ! वे कितनी उदारता पूर्ण मुझे डाँटते हैं। उस दिन की बात याद आती है तो भाव से तन-मन रोमांचित हो उठते हैं। उस डाँट में भी कितनी करूणा एवं आत्मीयता छुपी थी !

मुंबई में मैं जब वज्रेश्वरी में पूज्यश्री के साथ था, तब की यह बात है। एक संन्यासी मुझसे मिला। मेरा सुडौल शरीर एवं भरी जवानी देखकर एक बार उसने मुझे बुलाकर कहाः

"ऐ युवान ! तेरी इतनी छोटी-सी उम्र है, युवा शरीर है, इतना उत्साह है तो मेरे पास से संन्यास ले ले। किसी सफेद कपड़ेवाले साधु के चक्कर में पड़कर अपनी जिंदगी क्यों बरबाद करता है? मैं तुझे अनुष्ठान बताता हूँ। तू मेरे पास से ऋद्धि-सिद्धी की कला सीख ले। तुझे जो चाहिए वे चीजें मिलने लगेंगी। लोग तुझे पूजने लगेंगे।"

वह संन्यासी इस प्रकार के प्रलोभन देकर, मुझे कुछ कचरा देकर गुमराह कर रहा था। मैं तो उस समय नया-नया था। गुरुदेव को इस बात का पता चला। मुझे तुरंत ही बुलाया। चरणों में बैठाया और पूछाः

"तू वहाँ क्यों गया था? उसके साथ क्या क्या बातें कर रहा था?"

मैंने जो कुछ सुना था उन सबका ईमानदारी से श्रीचरणों में वर्णन कर दिया। सदगुरु के आगे ईमानदारी से दिल खोलकर बातें न करो तो हृदय मलिन होता है। अंदर ही अंदर बोझा उठाना पड़ता है। मैंने पूरा हृदय खोलकर सदगुरु के श्रीचरणों में रख दिया। संन्यासी के साथ जो बातें हुई थीं, उन्हें शब्दशः बता दिया। फिर मैं क्षणभर के लिए मौन हो गया। जाँच की कि कोई शब्द रह तो नहीं गया है न ! गुरु के साथ विश्वासघात करने का पाप तो नहीं लग रहा है न? मैंने बराबर आत्मनिरीक्षण किया और जो कुछ भी याद आया, वह सभी कह दिया।

ईमानदारीपूर्वक एक-एक बात कह देने के बाद भी मुझे ऐसी जोरदार डाँट पड़ी कि मेरा हार्ट फेल न हुआ, बाकी उत्साह, श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, सच्चाई वगैरह सब फेल हो रहा था। इतना डाँटने के बाद फिर गुरुदेव ने स्नेहपूर्ण स्वर से कहाः

"बेटा !"

अहा ! डाँटना भी इतना कठोर एवं 'बेटा' कहने में वात्सल्य भी इतना पूर्ण ! क्योंकि पूर्ण पुरुष जो कुछ करते हैं वह पूर्ण ही होता है।

मेरी श्रद्धा, विश्वास, प्रेम वगैरह सब 'फेल' होने की पूरी संभावना थी। परंतु..... जिन्होंने माया की झंझटों को फेल कर दिया है, जिन्होंने अज्ञान को फेल कर दिया है उनके श्रीचरणों में यदि हमारा अहंकार, हमारी अक्ल एवं चतुराई फेल हो जाय तो घाटा ही क्या है? मेरी सारी बुद्धिमत्ता, सारी व्यापारी विद्या, साधना की अक्ल, सभी फेल हो गयी। सिर नीचा हो गया, आँखे झुक गयीं। उन्होंने कहाः

"बेटा ! सुन। जब तक आत्मज्ञान न हो जाये तब तक इन भेदवादियों के संपर्क में बैठना, उनका सुनना एवं उन लोगों का मुँह देखना गुनाह है। साधक बाज पक्षी है और मनमुखी लोग शिकारी हैं। बाज पक्षी आकाश में उड़ान भरता है तब शिकारी धनुष्य पर तीर चढ़ाकर उसे गिरा देने के लिए ताकता रहता है। उसी प्रकार साधक ईश्वर की ओर चलता है तो उसे गिराने के लिए भेदवादी लोग, अज्ञानी लोग ताकते रहते हैं। साधक को संसार में पुनः खींचने के लिए परिस्थितियाँ भी ताकती रहती है। साधक के कान में लोग ऐसी ऐसी बातें भर देते हैं कि साधक का पतन हो जाये। ऐसे तो कई मनमुखी लोग संन्यास के कपड़े पहन कर इधर-उधर भटक रहे हैं। वे आत्मा की ओर जाते नहीं और तू ऊपर उठता है तुझे गिराने की बातें करते हैं। अज्ञानियों की बातों में मत आना।

बेटा ! मैं तुझे डाँटता हूँ परन्तु अंदर तेरे लिए प्रेम के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है। मैंने तुझे कंपा दिया परंतु तेरे लिए मेरे दिल में करुणा के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है।"

सच्चे माता-पिता तो सदगुरु ही होते हैं। हाड़-मांस के माता-पिता तो तुम्हें कितने ही जन्मों में मिले होंगे किन्तु सदगुरु जब मिलते हैं तो वे तुम्हें जन्म-मरण के चक्कर में से ही बचा लेते हैं।

'श्रीगुरुगीता' में देवाधिदेव भगवान शंकर माता पार्वती से कहते हैं-

अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारकम्।
ज्ञानवैराग्यसिद्धयर्थं गुरुपादोदकं पिबेत्।।

'अज्ञान की जड़ को उखाड़नेवाले, अनेक जन्मों के कर्मों को निवारनेवाले, ज्ञान एवं वैराग्य को सिद्ध करने वाले श्री गुरुदेव के चरणामृत का पान करना चाहिए।'

जन्म-जन्मान्तर तक भटकाने वाले जो कर्म हैं, बाहर सुख दिखानेवाले जो कर्म हैं, बाहर सत्य दिखानेवाली जो बुद्धि है, उस बुद्धि को बदलकर ऋतंभरा प्रज्ञा उत्पन्न कर दें, सरकनेवाले संसार से चित्त हटाकर शाश्वत परमात्मा की तरफ ले जायें - ऐसे सदगुरु मिल जायें तो वे अज्ञान मिटाकर, जन्म-मृत्यु के बँधनों को काटकर तुम्हें आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित कर देते हैं। ऐसे महापुरुषों की डाँट या फटकार भी मिल जाये तो वह कितनी कल्याणकारक होगी !

मैंने दूसरी बार भी ऐसी ही बेवकूफी की थी। गुरुजी उपलेटा पधारे हुए थे। किसी ने गुरुजी के लिए कुटीर और गुफा बनायी थी। मुझे पता चला तो मैं डीसा से दर्शन करने के लिए गया था। उपलेटा से गिरनार बहुत पास में है। मैंने सुना था कि गिरनार में बड़े-बड़े योगी एवं सिद्ध पुरुष रहते हैं। मेरा विचार था कि उपलेटा में पूज्यश्री के दर्शन करके जब विदा लूँगा तब पूज्यश्री से आज्ञा लेकर गिरनार के योगियों के दर्शन करके फिर डीसा की साधना कुटीर में चला जाऊँगा। परन्तु गुरुजी के पास से आज्ञा कैसे ली जाए? पूज्यश्री की जो सेवा करता था, उस सेवक से मैंने कहाः

"यहाँ से 20-30 किलोमीटर दूरी पर गिरनार है। मुझे गिरनार के योगियों से मुलाकात करनी है। तुम पूज्यश्री से यह कहना। पूज्यश्री जब प्रसन्न हों तब मेरे लिए आज्ञा माँग लेना और पूज्यश्री क्या कहते हैं वह मुझे बताना।"

उसने गुरुजी से कह दियाः

"आसाराम गिरनार के योगियों के दर्शन करके फिर डीसा की कुटीर में साधना करने जायेगा।"

बस, दूसरे दिन सुबह होते ही गुरुजी ने सत्संग में ही मुझे कान पकड़वा दिये। कथा में गुरु जी ने कहाः

"एक बार एक राजकुमार को राजा ने हाथ पकड़कर राजगद्दी पर बैठाकर राजतिलक करने का विचार किया। तब वह राजकुमार बोला कि मैं जरा चपरासियों एवं नौकरों से मिल लूँ।"

मैं तुरंत सावधान हो गया। गुरु जी बोलते-बोलते किसी तरफ देख रहे थे - यह भी मैं जान गया। उस समय निकट के तीन-चार व्यक्ति ही सत्संग में थे। उसके बाद उन्होंने एक दूसरी कथा कहीः

"एक बार सूर्य जल्दी-जल्दी भागा जा रहा था। तब लोगों ने सूर्य से पूछाः "कहाँ जा रहे?"

सूर्य ने जवाब दियाः "थोड़ा प्रकाश लेने जा रहा हूँ।"

"किसके पास?"

सूर्य ने जवाब दियाः "जुगनु के पास।"

अब सूर्य होकर जुगनु के पास भीख माँगने गया !

"सुनता है न ?"

मैंने कहाः "जी हाँ।"

मैं समझ गया कि वह इशारा मेरी ओर ही है। गुरुदेव बोलेः

"वह सूर्य मूर्ख था कि नहीं?"

मैं तुरंत बोल पड़ाः "जी.... वह मूर्ख मैं ही हूँ।"

इस प्रकार उस समय गुरुदेव ने मुझे भेड़-बकरियों जैसा होने से बचा लिया। मेरे गुरुदेव जैसे अथवा कबीर या नानक जैसे महापुरुष जब मिलते हैं तब अन्दर के सोये हुए सिंहत्व को

जगा देते हैं जिससे हमारी दीनता-हीनता चकना चूर हो जाती है। ऐसे गुरुजनों की डाँट के पीछे भी करुणा, प्रेम एवं कृपा ही भरी होती है।

ऐसे गुरुजनों के श्रीचरणों में हमारे कोटि-कोटि प्रणाम !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जहाँ भी रहे.... अपनी महिमा में मस्त !

एक बार पूज्य बापू नैनिताल के बस स्टैण्ड पर बैठकर नश्वर दुनिया के मायावी खेल को देख रहे थे।

उस समय सभी कुली एक ओर बैठकर हुक्का-बीड़ी पीते-पीते मौज से एक-दूसरे के साथ गप-शप कर रहे थे। इतने में अचानक वे लोग आपस में लड़ने लगे। पूज्य बापू को हुआ कि अचानक ये लोग लड़ने क्यों लगे? पूछताछ करने पर पता चला कि वे लोग मिलकर एक मकान किराये पर ले रहे थे। मकान का किराया 32 रूपये था। 15 कुलियों ने प्रत्येक व्यक्ति के दो रूपये के हिसाब से 30 रूपये इकट्ठे किये किन्तु दो रूपये कम पड़े वह कौन दे? इस विषय में झगड़ा हो रहा था।

उस जमाने में गरीब मजदूरों के लिए दो रूपये निकालना बड़ी बात थी। पूज्य बापू के पास उस समय नैनिताल में रहने के लिए कोई आश्रम या मकान नहीं था। पूज्य बापू ने कुलियों से कहाः

"अरे भाई ! तुम दो रूपये मेरे पास से ले लेना। 15 लोग तुम और 16 वाँ साथी मुझे बना लो। हम सोलह किरायेदार हो जायेगें और 32 रूपये किराया। क्यों? अब तो मामला निपट गया न?"

इस प्रकार पूज्य बापू ने 2 रूपयों में 'मेम्बरशिप' ले ली और कई वर्षों तक गर्मी के समय में वे उन लोगों के साथ रहे। वे 15 डोटियाल (कुली) और सोलहवें ये महान संत !

वे महा पवित्र हो गये थे। अनंत-अनंत ब्रह्मांडों के ये बेपरवाह बादशाह उन कुलियों के साथ रहे। अब कोई भी अपवित्रता उन्हें छू भी नहीं सकती थी। कहा जाता है कि लोहे के टुकड़े को मिट्टी में रखोगे तो जंग लगेगा। उसे धो-पोंछकर, सँभालकर अटारी पर रखोगे तो भी हवा लगने से पुनः जंग लग जायेगा किन्तु उस टुकड़े को एक बार पारसमणि का स्पर्श हो जाये फिर भले ही उसे अटारी पर रखो या कीचड़ में फेंक दो, उसे जंग नहीं लगेगा। पूज्य बापू भी भले गुफा में रहें या कुलियों के बीच रहें, उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। जिसने अपने में ही आत्मतृप्ति का अनुभव कर लिया हो उसे कभी कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। वे जहाँ भी रहते हैं वहाँ अपनी महिमा में ही मस्त रहते हैं।

श्री भोले बाबा ने ठीक ही कहा हैः

रहता सभी के संग पर, करता न किंचित् संग है।
है रंग पक्के में रंगा, चढ़ता न कच्चा रंग है।
है आपमें संलग्न, अपने आपमें अनुरक्त है।
है आपमें संतुष्ट सो, इच्छा बिना ही मुक्त है।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

उनकी तुलना किससे की जाये?

थोड़े वर्षों के बाद पूज्य गुरुदेव जब गर्मी के दिनों में नैनिताल आये उस समय एक ऊँची पहाड़ी पर स्वयं ही नीचे से पत्थर ले जाकर अपने रहने के लिए एक कुटी बनायी थी। प्रातःकाल वे जंगलों में घूमने जाते तब रास्ते में ढाक के जो पत्ते गिर जाते थे, उन पत्तों को इकट्ठा करके, ढेर बनाकर, उसका बड़ा गट्ठर बनाकर, खुद ही सिर पर रखकर पहाड़ पर बढ़ते। रास्ते में जो खड्डे आते उन खड्डों में वे पत्ते डालकर उनमें से खाद बनाते। फिर कुटिया के आसपास जो बगीचा बनाया था उसमें उसी खाद का उपयोग करते। ऐसे छोटे-छोटे काम करने में उन्हें जरा भी संकोच नहीं होता था।

समय एवं वस्तुओं का सदुपयोग करते हुए छोटे-से-छोटे काम को भी वे काफी दीर्घ एवं सूक्ष्म दृष्टि से विचारकर करते थे। इसीलिए अष्टावक्र मुनि ने कहाः

तस्य तुलना केन जायते।

ऐसे आत्मतृप्त, मुक्तात्मा की तुलना किससे हो सकती है। ऐसे महापुरुष जो अपने परम लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं, जो अपने निज स्वरूप में निरंतर रमण करते हैं, जिनके लिए कोई कर्त्तव्य बाकी नहीं रहता ऐसे महापुरुषों को इस प्रकार पत्ते इकट्ठे करके खाद बनाने जैसे क्षुद्र काम क्यों करने चाहिए? फिर भी वे ईश्वरदत्त वस्तुओं का महत्तम उपयोग करके समाज को सूक्ष्मता की ओर ले जाना चाहते हैं और सिखाते हैं कि जीवन में तुच्छ वस्तुएँ भी व्यक्ति के व्यक्तित्व की घड़ाई में बहुत महत्त्व रखती है। लोग भी उनके आदर्श पर पर चलकर निष्काम कर्म द्वारा नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्त करें ऐसा मार्गदर्शन उनके व्यवहार से मिलता था।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

तुम स्वयं अपने भाग्य के आप विधाता हो

पूज्य बापू जब नैनिताल में रहते थे तब एक बार एक सज्जन ने पूज्य बापू को पत्र लिखकर पूछाः

"हमने सुना है कि जब आप किसी को श्राप देते हैं तब उसका जड़-मूल से नाश हो जाता है और जब किसी को आशीर्वाद देते हैं तब वह निहाल हो जाता है।"

पूज्य बापू ने अपने शिष्य द्वारा उसके प्रश्न का उत्तर इस प्रकार लिखवायाः

"भाई ! लीलाशाह तो कुछ भी नहीं करता। लोगों के शुभ-अशुभ कर्म भी आशीर्वाद अथवा श्राप के रूप में मिलते हैं।"

इसके अलावा संक्षिप्त एवं सरल भाषा में उत्तर देते हुए श्रीरामचरितमानस एवं श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण ग्रन्थ के कुछ वचन भी लिखवाये। श्रीरामचरितमानस में से लिखवायाः

कर्म प्रधान विस्व करि राखा, जो उस करहिं तैसा फलु चाखा।

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में से लिखवायाः

"जीव के कर्म ही अपने सुख-दुःख का कारण बनते हैं।"

तुम अपने भाग्य के आप विधाता हो। कोई किसी के सुख-दुःख का दाता नहीं है। अपने कर्म, अपने विचार, अपनी ही मूर्खता एवं अपनी ही कुशलता से मनुष्य सुखी-दुःखी होता है। अपने पुण्यकर्म ही अपने को सत्पुरुषों के पास ले जाते हैं और अपने दूषित कर्म ही अपने को दूषित जगह पर ले जाते हैं। वास्तव में मनुष्य का भाग्य उसके अपने हाथों में है। मानव जैसा चिन्तन और कर्म करता है वैसा ही उसका भाग्य बनाता है।

करणि आपो आपनी, के नेड़े के दूर।

अपनी ही करनी (कर्म) से मनुष्य संत और भगवान के निकट या दूर होता है।

पूज्य बापू जब यात्रा करते तब भी संसारी भक्त अलग-अलग तरह के विचित्र प्रश्न पूछते थे। उनके विचित्र प्रश्नों को सुनकर कोई विद्वान व्यक्ति तो उलझ ही जाये। परंतु पूज्य बापू के लिए उनका जवाब देना आसान था। वे आत्मा में डुबकी लगाकर, देखते ही देखते भारी से भारी समस्या का भी खूब सहजता एवं सरलता से, लाक्षाणिक ढंग से जवाब दे देते। ब्रह्मज्ञानी के सामर्थ्य की तो बात ही क्या करना? उपनिषद् में भी आता हैः

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।

'ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही होते हैं।'

परमात्मा के गुण एवं सामर्थ्य परमात्मप्राप्त महापुरुषों में सहज ही आ जाते हैं। उनके लिए क्या असंभव हो सकता है ?

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐ

'सर्वजनहिताय' की भावना

पूज्यपाद सदगुरुदेव एक बार घूमते-घामते दक्षिण भारत में महान् योगीराज ब्रह्मज्ञानी श्री रमण महर्षि के पास गये थे। जब वे रमण महर्षि से प्रत्यक्ष मिले तब उनकी ज्ञाननिष्ठा और अन्तर्मुखता को देखकर श्री रमण महर्षि ने उनसे पूछाः

"आप इतनी ऊँची भूमिका को प्राप्त करने के बाद भी नीचे की भूमिका में कैसे रह पाते हैं?"

पूज्यश्री ने हँसते-हँसते सहजता से जवाब दियाः

"मेरे हजारों भाई आत्मानन्द की मस्ती से वंचित हैं। उन लोगों को आत्मानंद की प्राप्ति कराने के लिए नीचे की भूमिका में रहना मैं ज्यादा पसंद करता हूँ।"

श्री रमण महर्षि तो उनकी इतनी उच्च भावना एवं त्याग को देखकर जोर से उनके गले लग गये। महर्षि की आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे।

श्री रामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि संत दो प्रकार के होते हैं। जिस प्रकार लकड़ी का छोटा टुकड़ा पानी में तैरता है परंतु उस पर यदि एक छोटा सा पक्षी भी बैठे तो पक्षी सहित वह टुकड़ा पानी में डूबने लगेगा। किन्तु बड़े वृक्ष के तने के लकड़े में से बनायी गयी नाव खुद तो पानी में तैरती है और दूसरे यात्रियों को भी पार पहुँचाती है। इसी तरह ज्ञानी संत भी दो प्रकार के होते हैं- एक तो वे, जिन्होंने साधना करके अपने-आपको तार लिया हो। दूसरे वे जो खुद तो तरते हैं और दूसरों को भी तारते हैं। ऐसे संतों के लिए शास्त्र में कहा गया हैः

सः तृप्तो भवति सः अमृतो भवति।
सः तरति लोकान् तारयति।।

स्वामी विवेकानन्द कहते थेः

"ईश्वर के मार्ग पर चलना, भक्त बनना सरल है। भक्त से जिज्ञासु बनना सरल है। जिज्ञासु होकर आत्म-साक्षात्कार कर लेना और परमात्म-प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँच जाना भी सरल है परन्तु गुरु बनना खूब कठिन है। गुरुपद एक भयंकर अभिशाप है।"

आत्म-साक्षात्कार की ऊँचे से ऊँची अनुभूति करने के बाद भी, उससे नीचे आकर एक-एक व्यक्ति के साथ सिर खपाकर उसे उस अनुभूति तक ले जाना - यह कोई सरल काम नहीं है। पत्थर को भगवान बनाना सरल है क्योंकि पत्थर शिल्पी का विरोध नहीं करता परन्तु इस जीव को, दो हाथ-पैरवाले मनुष्य को शिव बनाना यह बहुत कठिन काम है क्योंकि यह अज्ञानी जीव जरा-जरा सी बात में विरोध करता है। ऐसा होने के बावजूद ब्रह्मवेत्ता महापुरुष अपने-आपकी चिन्ता किए बिना **'सर्वजनहिताय'** की भावना से अपना पूरा जीवन प्रभु-प्रसाद बाँटने में ही खर्च कर डालते हैं।

जगत में जो कुछ भी शांति, आनन्द दिखता है वह ऐसे महापुरुषों की करुणा-कृपा का ही परिणाम है। ऐसे अकारण कृपा करने वाले दयासिन्धु अपने एकान्तवास का समय एवं समाधि

का सुख छोड़कर मूढ़, अज्ञानी संसारीजनों के पाप-ताप दूर करने के लिए एवं उनको सच्चे सुख का मार्ग बताने के लिए अहैतुकी करुणा बरसाते ही रहते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विनोद के क्षणों में

पूज्य गुरुदेव कुटीर में अकेले रहते थे। कई बार कुटीर का दरवाजा बन्द होता किन्तु ऐसा लगता कि पूज्य श्री अन्दर किसी के साथ बात कर रहे हैं। उस वक्त मैं नया-नया था। दोपहर के समय उनके भोजन का टिफन उनकी कुटिया में पहुँचता तब कुटिया से बातचीत सुनाई पड़तीः

"लीला (शाह) ! रोटी खायेगा।"

मैं सोचता कि पूज्यश्री को केवल 'लीला' कहकर बुलाने वाला कौन पैदा हुआ है? किन्तु एक दिन यह रहस्य खुल गया। यह संवाद चल रहा था और किसी काम से पूज्य श्री ने मुझे अन्दर बुलाया। मैंने अन्दर जाकर देखा तो कुटिया में उनके सिवाय दूसरा कोई न था।

तब मुझे समझ में आया कि स्वामी जी अपने शरीर को अपने से पृथक मानकर, उससे विनोद-वार्ता करके फिर भोजन का श्री गणेश करते थे। भोजन सामने रखकर वे अपने शरीर से वार्तालाप करतेः

"बेटा ! भूख लगी है? रोटी खायेगा?"

फिर खुद ही शरीर की ओर से अपने-आपको जवाब देतेः

"आप मुझे खिलाएँगे तो खाऊँगा और रोटी खाऊँगा तभी जिऊँगा।"

"तू अन्न से जीता है और मैं?"

"महाराज ! आप तो जीवन देने वाले हैं।"

"अच्छा अच्छा.... बेटा ! तू समझता है। आज सत्संग सुना है न? तभी तुझे रोटी खाने को मिलेगी। बोल, कितनी रोटी खायेगा?"

"साँई ! तीन रोटी तो चाहिए ही।"

"सत्संग पचाकर सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण, इन तीनों गुणों से पार होगा तो ही तीन रोटियाँ तुझे खाने को मिलेंगी। बोल, ठीक है न?"

"हाँ साँई ! ठीक है। मैं तीनों गुणों से पार हो जाऊँगा।"

"शाबाश बेटा ! तो ले, अब रोटी खा ले।"

इस प्रकार वे अपने-आप से विनोद-वार्ता किया करते थे। अवस्था में विचरने वाले महापुरुष जो कुछ बोलते हैं, जो कुछ करते हैं, उन्हें समझना सामान्य मनुष्य की बुद्धि से बाहर की बात है। ज्ञानी को पहचानना बहुत कठिन है। ज्ञानी को समझने के लिए दूसरा ज्ञानी होना पड़ता है। तुम जिसे पहचानकर सारा व्यवहार करते हो, वह तो स्थूल शरीर है जबकि ज्ञानी तो

स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर से परे होते हैं। इसीलिए कई बार संतों का व्यवहार सामान्य बुद्धि की समझ में नहीं आता। उनकी दृष्टि व्यापक होती है। वे मन एवं इन्द्रियों से परे, आत्मसत्ता में स्थित होते हैं।

पूज्य स्वामीजी अपने शरीर को अपने से पृथक मानकर जो विनोद करते उस विनोद-लीला को कोई विरला साधक ही समझ पाता। शरीर को 'मैं' मानने की जो भ्रान्ति जीव को हुई है। उस भ्रान्ति को निकालने के लिए पूज्य स्वामी जी ने अपने साधनाकाल में यह आदत डाली थी। फिर सिद्ध अवस्था में भी विनोद करके अपनी इस आदत को दोहराया करते थे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

तू गुलाब होकर महक

एक बार पूज्य श्री ने गुलाब का फूल दिखाकर जो मुझसे कहा था वह आज भी मुझे ठीक से याद है। वे बोले थेः

एक बार मेरे सदगुरुदेव पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाह जी महाराज ने मुझे गुलाब का फूल बताकर कहाः "यह क्या है?"

मैंने कहाः 'बापू! यह गुलाब का फूल है।"

उन्होंने आगे कहाः "इसे तू डालडा के डिब्बे पर रख फिर सूँघ अथवा गुड़ के ऊपर रख, शक्कर के ऊपर रख या चने अथवा मूँग की दाल पर रख, गंदी नाली के पास रख ऑफिस में रख। उसे सब जगह घुमा, सब जगह रख, फिर सूँघ तो उसमें किसकी सुगंध आएगी?"

मैंने कहाः"जी, गुलाब की।"

गुरुदेव बोलेः "उसे गटर के आगे रख, फिर सूँघकर देख तो सुगन्ध किसकी आयेगी?"

मैंने कहाः "गुलाब की ही।"

गुरुदेवः "बस तू ऐसा ही बनना। दूसरे की दुर्गन्ध अपने में न आने देना वरन् अपनी सुगन्ध फैलाते रहना और आगे बढ़ते रहना। गुलाब को कहीं भी रख दो और फिर सूँघो तो उसमें से सुगन्ध गुलाब की ही आएगी। ऐसे ही हमारा जीवन भी गुलाब जैसा होना चाहिए। हमारे सदगुणों की सुगन्ध दूसरों को लेनी हो तो लें किन्तु हममें किसी की दुर्गन्ध प्रविष्ट न हो।

तू गुलाब होकर महक.... तुझे जमाना जाने।

तू संसार में गुलाब की तरह ही रहना। किसी के संस्कार अथवा गुण-दोष अपने में कदापि न आने देना। अपनी साधना एवं सत्संग की सुवास चारों ओर फैलाते रहना।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

दयालु दाता की अमीदृष्टि

सन् 1971 में स्वामी जी नैनिताल से हरिद्वार की ओर जा रहे थे। मुरादाबाद से टैक्सी में एवं फिर ट्रेन द्वारा यात्रा कर रहे थे। मैं और वीरभान स्वामी जी की सेवा में थे। मुरादाबाद की गर्मी असह्य थी। स्वामी जी स्टेशन पर स्नान करके गाड़ी की राह देख रहे थे। वहाँ किसी ने आकर पूछाः

"बाबाजी ! कहाँ जाने वाले हो?"

बस, बात-बात में सत्संग शुरु हो गया। आसपास मुसाफिरों की भीड़ एकत्रित हो गई। सत्संग करते-करते पूज्य श्री ने उन लोगों को अपनी मीठी नजर से निहाल कर दिया। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे का कल्याण चाहती है उसी प्रकार स्वामीजी यात्रियों के कल्याणार्थ उनको सरल भाषा में यथार्थ तत्त्व समझा रहे थे। जब तक हरिद्वार की ओर जानेवाली गाड़ी नहीं आयी तब तक उन दयालु दाता ने ज्ञान-भंडार को लुटाना जारी ही रखा।

गाड़ी आयी तब सामान अन्दर रखा। वहाँ दो बालक बैठे थे। स्वामी जी ने उन बालकों को मिठाई एवं सेवफल देने की मुझे आज्ञा दी। इतना ही नहीं, स्टेशन पर घूमते कुलियों एवं गरीब लोगों को प्रसाद देते हुए अपनी अमीमय दृष्टि बरसायी।

इस प्रकार पूज्य गुरुदेव हमेशा जहाँ-जहाँ भी जाते वहाँ-वहाँ संसार के भटकते जीवों को प्रसाद देकर, स्नेह की मीठी दृष्टि देकर एवं दिव्य अमृतवाणी से भगवन्नाम का रस पिलाकर उनके ऊपर अनुकृपा करते थे।

मैं भी देखता था कि पूज्य स्वामी जी पाटण, भीलड़ी, डीसा, मेहसाना और पालनपुर वगैरह स्टेशनों पर श्रद्धालुओ के प्रेम एवं भक्ति से दिये गये मेवा-मिठाई एवं फलों को उदारता से बाँटते थे। पूज्य श्री के निकट से गुजरने वाला कोई भी यात्री उनके प्रसाद से वंचित नहीं रहता था। पूज्य श्री के प्रेममय एवं दयालु स्वभाव का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है? पूज्य स्वामी जी मत-मतान्तर, बनावटी वेश-भूषा, आडम्बर एवं प्रतिष्ठा आदि से दूर ही रहते थे। वे तो सच्ची कमाई वाले दिलबर दरवेश थे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

लीलाशाह की मिठाई

मेरे गुरुजी का आश्रम नैनिताल में था। नैनिताल में नेपाल से गरीब लोग मजदूरी करने के लिए आते थे। उन लोगों को डोटियाल (कुली) कहा जाता था। वे लोग बस स्टैण्ड पर यात्रियों का सामान ढोकर पैसे कमाते थे। एक बार बाबा जी के साथ सामान लेकर एक कुली आश्रम में आया। बाबाजी ने मुझसे कहाः

"अरे आसाराम !"

"जी साँई !"

"रस्सी लाओ। इसको बाँधना है।"

"जी साँई ! रस्सी लाता हूँ।"

बाबाजी अपनी कुटी में गये और मैं रस्सी लाने का नाटक करने लगा। वह कुली तो घबरा गया। जो दो रुपये लेने का बोल रहा था, वह रूपये लिए बिना ही चले जाने का विचार करने लगा। मैंने उसे रोका और कहाः

"अरे, खड़ा रह।"

कुली ने पूछाः "भाई क्या बात है?"

मैंने कहाः "अरे भाई ! खड़ा रह। गुरुजी ने तुझे बाँधने की आज्ञा दी है।"

इतने में गुरुजी आये और कुली से कहने लगेः

"इधर आ.... इधर आ। ले यह मिठाई। खाता है कि नहीं? नहीं तो वह आसाराम तुझे बाँध देगा।"

उसने तो जल्दी-जल्दी मिठाई खाना शुरु कर दिया।

साँई बोलेः "खा, चबा-चबाकर खा। खाना जानता है कि नहीं ?"

उसने कहाः "बाबाजी ! जानता हूँ।"

साँई ने कहाः "अरे आसाराम ! यह तो खाना जानता है। इसे बाँधना नहीं।"

मैंने कहाः "जी साँई !"

साँई ने पुनः कहाः "आसाराम ! यह तो मिठाई खाना जानता है। चबा-चबाकर खाता है।"

फिर उसकी तरफ देखकर बोलेः "यह मिठाई घर ले जा। दो दिन तक थोड़ी-थोड़ी खाना। मिठाई कैसी लगती है।"

कुली ने कहाः "बाबाजी ! मीठी लगती है।"

साँई बोलेः "हाँ.... लीलाशाह की मिठाई है। सुबह में भी मीठी, शाम को भी मीठी, दिन को भी मीठी और रात को भी मीठी। लीलाशाह की मिठाई जब खाओ तब मीठी।"

कुली भले अपने ढंग से समझा होगा परन्तु हम तो समझ रहे थे कि पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू का ज्ञान जब विचारो तब मधुर-मधुर। ज्ञान भी मधुर और ज्ञान देनेवाले भी मधुर तो ज्ञान लेनेवाले मधुर क्यों न हो जाये? बाहर भले चाहे जैसी परिस्थिति आये परन्तु अन्दर की मधुरता और आनन्द किसी से प्रभावित नहीं होते। ऐसे संतों की क्रियाएँ और व्यवहार बहुत अटपटे होते हैं। बाह्य नजर से उनके व्यवहार भले ही समझ में नहीं आते हैं परन्तु उनमें बहुत गूढ़ रहस्य छिपे रहते हैं।

ज्यों केले के पात में, पात-पात में पात।

त्यों संतन की बात में, बात-बात में बात।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

कुदरत ने नियम बदला

आज से लगभग 30-32 वर्ष पहले की बात है। उस समय मेरे पूज्य सदगुरुदेव स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज श्रीकृष्ण गौशाला, शाहगंज, आगरा में विराजमान थे। एक दिन एक वृद्ध रोता-रोता गुरुदेव के पास आया और प्रार्थना करने लगाः

"साँई ! आशीर्वाद दो कि मैं मर जाऊँ। मेरे बच्चे मेरा कहना नहीं मानते। रात्रि को मुझे नींद नहीं आती। आँखों से दिखता नहीं। मैं बहुत दुःखी हूँ।" ऐसा कहकर उसने अपने दुःख का वर्णन किया।

पूज्य बापू ने कहाः "जाओ, हिम्मत करो। यहाँ आकर सिर खपाते हो..."

"साँ....ई ! आँखों से दिखे ऐसा कोई इलाज बताओ.... दया करो।"

पूज्य बापू ने कहाः "जा, वह जो आकड़ा दिखता है उसका दूध अपनी आँखों में डाल।"

उसने जाकर आकड़े के पत्ते तोड़कर उसका दूध निकालकर आँखों में डाला तो आँखें एकदम अच्छी हो गई। वह तो खूब खुश हो गया। जाकर दुकान में से मिठाई खरीदी और दुकानदार को प्रसाद के रूप में थोड़ी मिठाई देने लगाः

"ले भाई ! प्रसाद।"

दुकानदार ने पूछाः "यह किसका प्रसाद है"

वृद्ध ने कहाः "अरे ! तू देखता नहीं.... मेरी आँखें अच्छी हो गई हैं। मैं काफी समय से परेशान था परन्तु अब सब स्पष्ट रूप से देख सकता हूँ।"

"क्या इलाज किया?"

"इलाज तो हमारे सामने ही था। पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू ने बताया कि आँख में आकड़े का दूध डाल। मैंने डाला और अच्छा हो गया।"

दुकानदार की आँखों में भी तकलीफ थी। वह दुकान में से तुरन्त ही बाहर आया और जाकर आकड़े का दूध आँखों में डाला तो वह अंधा हो गया। आकड़ा तो वही था परन्तु पूज्यश्री लीलाशाहजी बापू ने कहा तो प्रकृति ने अपना नियम बदल डाला।

वास्तव में देखा जाये तो आकड़े के पत्ते का दूध आँखों में डालने से अंधापन हो जाता है। दवा तो दोनों ने आकड़े के दूध की ही की थी, फिर भी परिणाम दोनों के लिए अलग-अलग आया। क्योंकि एक ने संत की आज्ञा के अनुसार श्रद्धा रखकर उपाय किया जबकि दूसरा बिना अपनी अल्प मति से अनुकरण कर बैठा जिससे वह नेत्रज्योति खो बैठा।

अद्वैतभाव में प्रतिष्ठित महापुरुष जब अपनी आत्ममस्ती में आकर कुछ कह देते हैं तो बाह्य दृष्टि से उलटे परिणामवाला कथन होने के बावजूद भी श्रद्धालु व्यक्ति के लिए अनुकूल हो जाता है। ऐसे महापुरुष स्वयं कुछ नहीं करते परन्तु उनकी उपस्थिति मात्र से ही सब हो जाता है। सूर्य कभी नहीं कहता कि मैं लोगों को उठाता हूँ अथवा रोग दूर करते हैं और पूरी पृथ्वी को परितृप्त करता हूँ। परन्तु सभी जानते हैं कि सभी अच्छे कार्य भगवान भास्कर के उदय हुए बिना नहीं होते। सूर्य की उपस्थिति मात्र से सब परिवर्तन होने लगता है। सूर्य को कुछ नहीं करना पड़ता।

इसी प्रकार आत्मभाव, ईश्वरीयभाव में स्थित महापुरुष कुछ भी करते नजर नहीं आते, परन्तु उनकी उपस्थिति मात्र से सहज में ही शुभ कार्य होने लगते हैं। जो जिस भाव से उनके पास जाता है और उसका भाव शुद्ध होता है तो अवश्य उसे वैसा फल मिलता है। इसे लोग चमत्कार कहते हैं। चमत्कार भी इसलिए कहते हैं कि मनुष्य की छोटी-सी तार्किक बुद्धि में यह बात समझ में नहीं आती। नहीं तो, आध्यात्मिक क्षेत्र में तो इसका पूरा विज्ञान है।

सचमुच ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों की लीला अटपटी है और अगम्य है उनके कार्य !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

नम्रता और महानता का अदभुत समन्वय

एक बार मैं परम पूज्य स्वामी जी श्री लीलाशाहजी महाराज के सान्निध्य में नैनिताल के आश्रम गया था। स्वामीजी 90 वर्ष की उम्र पार कर चुके थे फिर भी प्रतिदिन नियमित रूप से शारीरिक परिश्रम करते। कई बार आश्रम से बाहर घूमने जाते तब आसपास पड़े पत्थरों को इकट्ठा करके छोटी सी कुटिया बना देते। वहाँ आने वाले किसी भी यात्री को ऐसी कुटियाएँ रहने के काम आ जातीं।

एक दिन इसी प्रकार मैं और स्वामी जी पत्थर बटोर कर एक जगह पर इकट्ठे कर रहे थे। उस समय दो कुटुम्ब वहाँ आये। हम दोनों मस्त दशा में थे। लोगों के बीच रहना हो तब धोती वगैरह पहनें किन्तु अभी इसकी परवाह कौन करे? दोनों के शरीर पर एक-एक वस्त्र ही था। वे लोग पास में आये। उन लोगों को पास के आब्ज़रवेटरी नामक एक दर्शनीय स्थल पर जाना था, किन्तु मार्ग भूलने से इस ओर आ गये थे। जानकारी पाने के लिए वे हमारे पास आये। हमारे वेश देखकर उन्होंने हमें कुली समझ लिया। उनमें से एक ने दूर से ही हमें बुलायाः

"ऐ कुली ! तुम हमको आब्ज़रवेटरी का रास्ता दिखा सकते हो?"

स्वामी जी ने तो उसी स्वाभाविक मुद्रा में कहाः

"जी हजूर ! चलो, अभी दिखा देता हूँ।"

जो छोटा नहीं बन सकता वह बड़ा भी नहीं बन सकता। परमात्मा तो अणु से भी छोटा है और महान् से भी महान् है।

अणोरणीयान्महतो महीयान्।

ऐसे परमात्मा के साथ जिन्होंने तादात्म्य साध लिया है उनके लिए मान-अपमान सभी बराबर हैं किन्तु मुझे मेरे सदगुरुदेव के लिए उन लोगों के द्वारा प्रयुक्त वह भाषा मंजूर नहीं थी, इसलिए मुझे तो गुस्सा आ गया। ऐसे महान सदगुरु को वे मूर्ख लोग कुली कहते हैं ! फिर भी स्वामी जी की सभ्यता को देखकर मैं शान्त रहा।

आश्रम और आब्जरवेटरी ये दोनों पास-पास की पहाड़ियों पर ही हैं। हम उन्हें रास्ता बताने चले। आगे बड़े कुली एवं सबके पीछे छोटे कुली और दोनों के बीच पूरी कतार।

रास्ते चलते-चलते एक भाई ने अपनी बात कही। वे लोग सिन्धी थे। जबलपुर से नैनिताल घूमने के लिए आये थे। उन्होंने पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू का नाम सुना था। उनके लिए उन्हें आदर भी था किन्तु कभी उन्हें देखा नहीं था। नैनिताल में पूज्य बापू की कुटीर है यह पता था किन्तु कहाँ पर है यह पता नहीं था। कई लोगों से पूछकर देखा किन्तु कोई भी जानकारी न दे सका। उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने कहाः

"मैंने आश्रम देखा है और तुम्हें भी दिखाऊँगा।"

हम इस प्रकार बातें करते-करते पीछे चल रहे थे और 90 वर्षीय पूज्य बापू हम सभी से आगे फटाफट चलते जा रहे थे। यह देखकर उस मंडली में से एक महिला सिंधि भाषा में बोल उठीः

"उस बूढ़े को तो देखो ! कैसे जवान की तरह फटाफट भागे जा रहा है ! हम तो उसकी बराबरी तक नहीं कर सकते।"

अब मुझसे रहा न गया। मैंने सोचा कि अब यदि इन लोगों को ज्यादा समय तक अंधेरे में रखूँगा तो अनजाने में ये लोग ज्यादा गलतियाँ करते जायेंगे। इसलिए मैंने उनसे कहाः

"तुम तो कहते हो कि तुमने पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू के दर्शन नहीं किये हैं परन्तु मैं कहता हूँ कि तुमने दर्शन किये हैं।"

वे बोलेः "नहीं, हमने दर्शन नहीं किये हैं। यदि दर्शन किये होते तो झूठ बोलने का क्या प्रयोजन है?"

मैंने कहाः "चाहे जो हो, परन्तु तुमने दर्शन किये हैं यह बात सच्ची है। तुम जिनके दर्शन करने के लिए कुटीर का रास्ता पूछते-पूछते थक गये और जिन्हें तुमने कुली कहकर सम्बोधित किया वे ही महापुरुष अभी तुम्हें मार्ग बताने के लिए आगे-आगे चल रहे हैं। बोलो, दर्शन किये हैं कि नहीं?"

"क्या बोलते हो !" ऐसा कहकर वह दर्शक वृन्द क्षण भर के लिए अवाक् हो गया ! जीभ बाहर निकल गयी ! जिन महान् संत के चरणों सिर झुका देना था उन्हें ही अनजाने में कुली

एवं बूढ़े जैसा असभ्य शब्द कहकर मखौल उड़ाया ! इसके लिए सभी को पश्चाताप होने लगा। सभी दौड़कर जल्दी-जल्दी पूज्यश्री के आगे निकल गये और उनके चरणों में गिर पड़े। सब माफी माँगने लगेः

"साँई ! हमसे बड़ी भूल हो गई।"

साँई ने तुरन्त ही कहाः "अरे ! कुछ भी नहीं हुआ। सब भूल जाओ।"

ब्रह्मवेत्ता संतों की कैसी अहैतुकी कृपा होती है ! पूज्य श्री के सान्निध्य में आनेवाले सज्जनों के वार्तालाप एवं उनके दिए गय जवाब पर से मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि स्वामी जी कुछ नहीं करते, परन्तु सब स्वाभाविक ही हो जाता है। उसका यह सचोट दृष्टांत है।

पूज्य गुरुदेव के दर्शन करने के लिए उन लोगों की शुद्ध भावना थी। इसीलिए प्रकृति ने इस प्रकार का आयोजन किया था। इसका ख्याल उन लोगों को शायद ही आया होगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

सरलता और व्यवहारकुशलता

संतों की लीला अनोखी होती है। सामान्य मानव की बुद्धि से तो उसे नापना संभव ही नहीं है। उनकी लीला को समझना यह अपनी सीमित बुद्धि के बाहर की बात है।

एक बार पाटण से पूज्य स्वामीजी प्रस्थान कर रहे थे। भक्तों न एक जीप गाड़ी को सजाकर पूज्य स्वामी जी की भावभीनी विदाई के कार्यक्रम का आयोजन किया। बैण्ड-बाजे समेत हजारों भक्त उस शोभायात्रा में जुड़े हुए थे। शोभायात्रा पाटण के मुख्य मार्गों से गुजरती हुई रेलवे स्टेशन के पास पहुँची।

तब अचानक पूज्य स्वामीजी ने अपने सुसज्जित जीप गाड़ी रुकवा दी। स्वयं नीचे उतर पड़े। बैण्ड-बाजे वालों को, सजी हुई जीप गाड़ीवालों को संकेत कियाः "तुम आगे चलो... मैं जामफल (अमरूद) लेकर आता हूँ।"

एक जामफल वाली के पास जाकर वे जामफल लेने बैठ गये। जामफल के ढेर में से बड़े-बड़े अच्छे तीन जामफल तुलवाये। तौलने में उस जामफलवाली ने डंडी मारी तब पूज्य स्वामी जी ने कहाः

"तौलने में ठगी मत कर।"

जामफलवाली जरा लोभी थी, अतः ज्यादा भाव माँगने लगी। स्वामी जी ने उससे ठीक भाव लगाने के लिए कहा। भाव की रकझक होने लगी...

जिन्होंने लाखों-करोड़ों रूपये दैवी कार्यों में लुटा दिये थे। ऐसे महापुरुष गलत ढंग से दो पैसे के लिए भी ठगाना नहीं चाहते। हजारों की संख्या में लोग जिनका जय-जयकार कर रहे है उस वाहवाही में भी उनकी मस्ती उलझ नहीं जाती।

'तुम आगे चलो... मैं जामफल लेकर आता हूँ...' कहने में भी उनकी कितनी सरलता ! कितनी सहजता ! कितनी स्वाभाविकता ! कैसी बेपरवाही !

इस दृश्य को मैंने अपनी आँखों से निहारा था। उस समय जामफल चुनने और खरीदने में मैं भी साथ ही था।

एक तरफ स्वामीजी की शोभायात्रा और दूसरी तरफ स्वामी जी इतने सादे और सरल बनकर रास्ते पर से जामफल खरीद रहे हैं ! जितने सरल स्वभाव के उतने ही व्यवहारकुशल भी।

जामफलवाली के साथ हो रहे भाव-ताव को देखकर कई भक्तों ने आकर पूज्य स्वामीजी से प्रार्थना कीः

"साँई ! जामफलवाली जो पैसे माँगेगी, हम उसे दे देंगे। शोभायात्रा को आगे बढ़ाना है। हजारों लोग आपके दर्शन की इच्छा से आँखें बिछाए मार्ग पर खड़े हैं।"

फिर भी स्वामी जी तो योग्य भाव करके, व्यवहारकुशलता को पूरी तरह निभाकर बाद में ही शोभायात्रा में जुड़े।

सचमुच, उनकी सहजता को किस तरह जान सकोगे? लोग क्या कहेंगे?' इसकी उन्हें जरा भी परवाह नहीं होती। ऐसे महापुरुष शाहों के शाह होते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सदगुरु के मार में भी प्यार

धोबी की प्रत्येक चेष्टा कपड़े में से मैल निकालकर उसे उज्जवल करने की होती है। कुम्हार की प्रत्येक चेष्टा घड़े को पक्का बनाने की होती है। उसी प्रकार गुरु की चेष्टा साधक को सिद्ध बनाने की होती है.... शिष्य को गुरु बनाने की होती है.... जीव को शिव बनाने की होती है।

गुरु धोबी शिष्य कपड़ा, साबुन निर्जनहार।
सुरत शिला पर बैठकर, निकसे मैल अपार।।

धोबी जिस प्रकार साबुन लगाकर, पत्थर पर रगड़-रगड़कर कपड़े का मैल धो डालता है उसी प्रकार गुरु अपने ज्ञान-उपदेश द्वारा शिष्य के अज्ञानरूपी मैल को, जीवभावरूपी मैल को निकाल देते हैं। गुरु के सभी व्यवहार में ईश्वरीय प्यार होता है, फिर भले वे फटकारें अथवा मधुर वाणी से प्यार करें। कड़वे अथवा मीठे उनके तमाम व्यवहार शिष्य के उत्थान के लिए ही होते हैं। धोबी का धोया हुआ कपड़ा कालान्तर में फिर से मैला हो जाता है, किन्तु गुरु जिस शिष्य के

जीवन का मैल दूर कर देते हैं अर्थात् उसे अपने शिवस्वरूप का परिचय करा देते हैं वह शिष्य पुनः मैला नहीं होता।

गुरु शिष्य को डाँटते हैं, आश्रम में से उसको निकाल देते हैं, भरी सभा में उठक-बैठक लगवाते हैं - ऐसा वे द्वेषबुद्धि से नहीं करते, किन्तु शिष्य के जो दुर्गुण हैं, जो उसे ऊपर उठने से रोकते हैं उन्हें दूर करने की सदभावना से प्रेरित होकर वे ऐसा करते हैं। अन्दर से उनका दिल अत्यन्त कोमल एवं प्रेममय होता है किन्तु ऊपर से कठोर व्यवहार करके वे शिष्य की गलतियों को निकालते हैं।

मेरे गुरुदेव अपने एकदम निकट के सेवक को सबके बीच उठक-बैठक लगवाते और फटकारते। एक बार उस सेवक ने पूछाः

"स्वामी जी ! आप दयालु हैं इसका तो हम सब अनुभव करते हैं परन्तु जब आप नाराज होते हैं तब सभी के छक्के छुड़वा देते हैं। स्वामी जी ! आप जब मुझें डाँटें अथवा मेरी गलती बतायें तब मुझे एकान्त में बता देते ! किन्तु आप जब सभा में होते हैं, सत्संग करते हैं, आपके हाथ में माइक होता है तभी आप हमारी गलतियाँ बताते हैं.... हमें डाँटते हैं ! गुरुदेव ! बिना माइक के भी आप मेरी गलती एकान्त में कह दें तो.... सबके बीच होता अपमान मुझसे सहन नहीं होता। कई लोग मुझे पहचानते हैं, मान देते हैं, पूजते हैं और उन सबके बीच आप माइक के ऊपर..."

गुरुजी ने फिर से करूणा की डाँट बरसाते हुए कहाः

"बेवकूफ ! गधे ! वाहवाही सबके बीच होती है, फुग्गे में हवा तो सबके बीच भरती है तो उसे लोगों के बीच क्यों नहीं निकलूँगा? यही सच्ची रीति है बेटा ! तुझे पता नहीं।"

वह लड़का वीरभान था। पहले वह सब्जी की लारी चलाता था। खूब अफीम और गाँजा पीता था। धीरे-धीरे वह स्वामी जी के निकट आया तो सुधर गया और स्वामीजी का निजी सेवक हो गया। कई बार वह पूज्य गुरुदेव की प्रशंसा करते हुए कहताः

"देखो ! संत कितने दयालु हैं !"

कभी उसे ऐसा जुनून चढ़ता तो कह देताः "मुझे यहाँ नहीं रहना। दस वर्ष से आपके साथ रहता हूँ। मुझे क्या मिला? मुझे चले जाना है।"

स्वामीजी भी कहतेः "बिस्तरे-पोटले उठाकर जा।"

फिर दूसरे साधक से कहतेः "वीरभान को यहाँ एक मिनट भी नहीं रखना। उसे इस आश्रम से बाहर निकाल दो।"

जब वीरभान बिस्तरे-पोटले बाँधकर जाने लगता तब स्वामी जी किसी से कहतेः "वह अकेला जा रहा है तो फिर से वापस आ जायेगा। यह पैसे ले जाओ। उसे बस स्टैण्ड पर जाकर, बस में धक्के मारकर बैठाकर फिर आना।"

फिर धीरे-से दूसरे साधक को अकेले में बुलाकर कहतेः

"वीरभान यदि सचमुच में ही जाने लगे तो धीरे-धीरे समझाकर उसे वापस ले आना क्योंकि यदि वह सचमुच ही चला जायेगा तो फिर से लारी चलायेगा, अफीम-गाँजा पियेगा और बरबाद हो जायेगा।"

इस प्रकार बाहर से कितने कठोर दिखते और अन्दर से कितने करुणामय !

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।।

'अलौकिक सत्पुरुषों के वज्र से भी कठोर एवं पुष्प से भी कोमल हृदय को जानने में कौन समर्थ है?'

आखिर में ऐसे स्वामी जी की विजय हुई और ऐसा सेवक सफल जीवन जी गया। जिस प्रकार साधुओं की पूजा होती है उसी प्रकार उस सब्जी बेचनेवाले और अफीम-गाँजा पीने वाले की पूजा आदिपुर में हो रही है। स्वामीजी ने एक नाचीज जीव को सेवकों का स्वामी बना दिया।

सदगुरु शिष्य को समझाने के लिए, उसके अहंकार को पिघलाने के लिए, जन्म-मरण के पाश से उसे छुड़ाने के लिए कैसी-कैसी युक्तियाँ अपनाते हैं ! कबीर जी ऐसे सदगुरुओं के लिए कहते हैं-

सदगुरु मेरा सूरमा, करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का, हरे भरम की कोट।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

कुछ भी नहीं बनेगा....

मेरे गुरुदेव अपने हस्ताक्षर करने में भी काफी समय लगाते थे। अपना नाम लिखने में भी उन्हें कुछ मिनटें लग जाती थीं क्योंकि उन्होंने ऐहिक जगत की पढ़ाई के पीछे जरा-सा भी समय नहीं लगाया था। उन्हें ऐसी जरूरत भी नहीं पड़ी थी क्योंकि जिन्हें ब्रह्म-साक्षात्कार हो गया हो उनके लिए जगत का मिथ्यात्व दृढ़ हो जाता है। उनकी वृत्ति व्यापक बन जाती है। वे एक शरीर में होते हुए भी अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों में व्याप्त हो जाते हैं। उनके लिए कोई विधि-निषेध नहीं रहता। उनके लिए कोई कर्तव्य नहीं रहता। उनके लिए ऐहिक जगत की जानकारी का कोई मूल्य नहीं रहता। उन्हें ऐहिक विद्या अथवा शास्त्रों को पढ़ने की कोई जरूरत नहीं रहती। वे जो कुछ बोलते हैं वही शास्त्र बन जाता है। शास्त्र उनके पीछे-पीछे चलते हैं। संत तुकारामजी ने जिन अभंगों को गाया था वे अभंग महाराष्ट्र यूनिवर्सिटी में एम.ए. के विद्यार्थियों के अभ्यासक्रम में हैं। संत तुकारामजी ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे किन्तु वे जो बोले उसे पढ़कर, पेपर में लिखकर पास होने का सौभाग्य एम.ए. और पी.एच.डी. के विद्यार्थियों को मिलता है। श्री रामकृष्ण परमहंस

ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे परन्तु नरेन्द्र (विवेकानन्द) जैसे, केशवचन्द्र सेन जैसे कई विद्वानों को मार्गदर्शन देने के लिए वे समर्थ हो गये। इसीलिए संत तुकारामजी न कहा हैः

आमी बोलतो वेद बोलते।

'हम जो बोलते हैं वही वेद बोलते हैं।'

एक बार ब्रह्मज्ञान हो जाने के बाद ब्रह्मज्ञानी महापुरुष शास्त्र का आधार लेकर बोलें अथवा ऐसे ही बोलें, उनकी वाणी वेदवाणी हो जाती है।

एक बार ब्रह्मज्ञान हो जाने के बाद ब्रह्मज्ञानी महापुरुष शास्त्र का आधार लेकर बोलें अथवा ऐसे ही बोलें, उनकी वाणी वेदवाणी हो जाती है। बड़े-बड़े पढ़े-लिखे विद्वान, डॉक्टर, वकील, राजनेता आदि भी उनके श्रीचरणों में बैठकर सुख-शान्ति पाते हैं, उनसे मार्गदर्शन लेते हैं।

अमेरिका के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को करोड़ों डालर खर्च करने पर भी जो ज्ञान नहीं हुआ, वह ज्ञान मेरे गुरुदेव को पाटण से मेहसाना आती शटल ट्रेन में एक ही मिनट में हो गया।

एक बार पूज्य बापू के साथ मैं और दो-तीन साधक मेहसाना जा रहे थे। डॉ. शोभसिंह नामक एक सज्जन 'टाइम्स आफ इन्डिया' अखबार पढ़कर खुश होते-होते पूज्य बापू से कहने लगेः

'बापू ! बापू ! देखो, आज वैज्ञानिकों ने कितनी सारी प्रगति कर ली है ! वैज्ञानिक रॉकेट में बैठकर चन्द्रलोक तक घूम आये, वहाँ से मिट्टी भी ले आये। अब वे लोग एक वर्ष में वहाँ हॉटल बनानेवाले हैं, जिससे धनवान लोग वहाँ छुट्टियों में रह सकेंगे।"

पूज्य बापू ने एक मिनट अन्तरात्मा के ध्यान में डुबकी लगाकर, इन्द्रयों को मन में, मन को बुद्धि में और बुद्धि को परमात्मा में लीन करके फिर कहाः

"अभी कुछ नहीं होने वाला है। होटल-वोटल कुछ नहीं बनेगा। सब चुप होकर बैठ जायेंगे।"

आज उस बात को लगभग 25 वर्ष हो गये हैं। करोड़ों डॉलर खर्च हो गये, फिर भी आज तक चन्द्रलोक पर कोई हॉटल नहीं बना, दुनिया जानती है।

आज से 25-30 वर्ष पहले विश्व के तमाम समाचारपत्रों में पहले पृष्ठ पर समाचार छपे थे कि "वैज्ञानिक चन्द्रलोक तक पहुँच गये हैं। वहाँ जीवन की संभावना है और अब एकाध वर्ष में वहाँ होटल बनेगा।' परन्तु वहाँ चन्द्रलोक पर होटल तो क्या आज तक कुछ भी नहीं बना, यह आप सभी जानते ही हो।

कैसा होगा उन महापुरुषों का चित्त ! चलती ट्रेन में ही अन्तर्मुख होकर ऐसा सत्य संदेश सुना दिया कि जो आज तक सत्य साबित हो रहा है। धन्य है भारत और धन्य है भारत के आत्मारामी संत और धनभागी हैं ऐसे संतों का सान्निध्य पाने वाले साधक !

श्री रामचन्द्रजी के गुरु श्री वशिष्ठ जी महाराज ने भी ठीक ही कहा हैः "हे रामजी ! ज्ञानवान को तो नमस्कार है ही, पर उनकी दृष्टि जिन पर पड़ती है उनको भी मेरा प्रणाम है !"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पूर्ण गुरु किरपा मिली...

नर्मदा नदी के तट पर मोटी कोरल गाँव के पास एक एकान्त गुफा में ईश्वर-दर्शन के लिए मैं साधना कर रहा था। उस समय मेरे इष्टदेव मुझे पूर्ण रूप से प्रेरणा करते थेः

"अगर सचमुच में मेरे दर्शन करना चाहते हो तो मेरे दर्शन लीलाशाहजी में ही होंगे।"

बार-बार मुझे यही प्रेरणा होती थी। एक बार मैं चाली दिन का अनुष्ठान करने के लिए बैठा था। सैंतीसवें दिन लगभग 2 बजे के बाद एक बार मुझे वही अलौकिक प्रेरणा फिर से हुई तब मैंने गोधरा के श्री दयालदास के पास से जानकारी मँगवाई कि आज कल पूज्य स्वामी जी कहाँ पर पधारें हैं। मुझे बताया गया कि मुंबई स्थित गणेशपुरी में नारायणदास के बंगले में पूज्य स्वामीजी रुके हुए थे।

मैं सुबह आठ बजे वहाँ पहुँचा। उस समय स्वामी जी घूमने के लिए बाहर जा रहे थे। रास्ते में ही मुझे पूज्य स्वामी जी के दर्शन हुए। उस समय के दर्शन एवं मेरी भावना का क्या वर्णन करूँ ! श्रद्धा एवं भाव से भरी हुई मेरी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। दर्शन से पवित्र हुई आँखों के आँसुओं से मेरा हृदय निर्मल हो गया।

लगभग 11 बजे पूज्य स्वामी जी निवास स्थान पर वापस पधारे तब एकान्त में पुनः उनके दर्शन हुए। उन्होंने मुझसे पूछाः

"कौन-सी साधना करता है? क्या-क्या अनुभव हुए?"

एक बार पुनः मेरा हृदय भाव से भर गया। मैंने उनके श्रीचरण पकड़ लिये। दर्शन से कृतार्थ हुई मेरी आँखे मेरे जीवन के लक्ष्य की प्यास मिटा रही थीं। मैं वाणी से कुछ बोल नहीं पाया। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। दयालु गुरुदेव ने आश्वासन देते हुए कहाः

"सब ठीक हो जायेगा।"

संवत 2021 के आश्विन शुक्ल द्वितिया के दिन दोपहर को ढाई बजे पूज्य गुरुदेव ने एक सज्जन को पंचदशी का सातवाँ प्रकरण पढ़ने के लिए कहा। पूज्य गुरुदेव ने मुझे प्रेमपूर्वक पास बैठाकर सुनने का इशारा किया। मैं एकाग्र मन से सुनने लगा। 15-20 वाक्य ही पढ़े गये होंगे और उस परम सौभाग्यशाली घड़ी का उदय हुआ जिसकी वर्षों से प्रतीक्षा थी। साधना की इतनी तीव्र लगनवाले अपने प्यारे शिष्य को देखकर सदगुरु का करुणापूर्ण हृदय छलक उठा। उनके हृदय में से बरसते कृपा-अमृत ने साधक की तमाम साधनाओं को पूर्ण कर दिया। पूर्ण गुरु ने शिष्य को पूर्ण गुरुतत्त्व में सुप्रतिष्ठित कर दिया। जीव को अपने शिवत्व की पहचान करा दी।

उस समय मेरे तन एवं मन की क्या स्थिति थी ! आँखें खोलने की भी इच्छा नहीं होती थी। कृपासागर की कृपा का वर्णन कौन कर सकता है? वाणी एवं कलम से उसका वर्णन करना असम्भव है। बेहद कृपा ! बेहद कृपा !! ज्ञानी महापुरुषों का अनुभव कैसा होता है उसका पूरा वर्णन सम्भव नहीं है। उन महापुरुषों का अनुभव कैसा होता है इसके लिए तो वेद भी **'नेति... नेति...'** कहते हैं। वेद भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। गुरु नानक ने कहा हैः

मत करो वर्णन हर बेअन्त है क्या जाने वो कैसा रे...

तरंग स्वाभाविक रूप से सागर है। तरंग को सागर बनना नहीं है। केवल तरंगपना मिटाना है। उसी प्रकार जीव को ब्रह्म बनना नहीं है, अपना जीवपना मिटाना है। जीवभाव मिटा तो वह ब्रह्म तो है ही।

गलिते देहाध्यासे विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।।

देहाध्यास पिघलते ही 'सच्चिदानंद परमात्मा मेरा ही आत्मा है... वह मैं ही हूँ' ऐसा अनुभव हो गया। 'अनुभव हो गया' - ये भी शब्द हैं। फिर 'अनुभव' और 'अनुभव करने वाला' दो नहीं रहते, एक ही हो जाते हैं।

देह सभी मिथ्या हुई, जगत हुआ निस्सार।
हुआ आत्मा से तभी, अपना साक्षात्कार।।
पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान।
आसुमल से हो गये, साँई आसाराम।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अब ध्यान रखना.....

सत्पुरुषों का, सदगुरुओं का हृदय कैसा करुणामय होता है इसका वर्णन करने की शक्ति मेरी जिह्वा में नहीं है.... उन्हें नापने की ताकत किसी में भी नहीं है।

गुरुजी घूमने के लिए निकले थे। वे जहाँ रोज बैठते थे वहाँ आगे एक जंगली पौधा था जिसे बिच्छू का पौधा कहते हैं। उसके पत्तों को यदि हम छू लें तो बिच्छू के काटने जैसी पीड़ा होती है। मैंने सोचा कि 'गुरुजी आयेंगे और यहाँ बैठेंगे... यह बिच्छू का पौधा बड़ा हो गया है। अगर यह गुरुदेव के श्रीचरणों को अथवा हाथों को छू जायेगा तो गुरुदेव के शरीर को पीड़ा होगी।'

मैंने श्रद्धा और उत्साहपूर्वक सावधानी से उस पौधे को उखाड़कर दूर फेंक दिया। गुरुजी ने दूर से यह देखा और मुझे जोर से फटकाराः

"यह क्या करता है?"

मैंने खुलासा कियाः "गुरुजी ! यह बिच्छू का पौधा है। कहीं छू न जाये।"

प्राणी मात्र के परम हितैषी, सब जीवों के कल्याण का ध्यान रखने वाले गुरुजी ने करूणा से भरकर दयार्द्र कोमल वाणी में कहाः

'बेटा ! मैं रोज यहाँ बैठता हूँ... सँभलकर बैठता हूँ.... इस पौधे में भी प्राण हैं। उसे कष्ट क्यों देना?"

महापुरुषों का, सदगुरुओं का हृदय कितना कोमल होता है !

वैष्णवजन तो तेने कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे....

परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे....

जिसके स्पर्शमात्र से बिच्छू के काटने जैसी पीड़ा होती है, ऐसे पौधे को गुरुजी के बैठने की जगह से मैंने दूर किया तो गुरुजी ने मुझे अच्छी तरह से फटकारा। फटकार में करुणा तो थी ही, साथ-ही-साथ ज्ञान भी था। मुझे अभी तक वह याद है। मैंने गुरुदेव के हित की भावना से वह काम किया था परन्तु किसी का हित साधने की वृत्ति से भी किसी को पीड़ा हो ऐसा काम अपने हाथ से नहीं होना चाहिए।

गुरुदेव ने कहाः "जा, कहीं गड्डा खोदकर उस पौधे को फिर से लगा दे।"

मैं उस पौधे को लगाकर पुनः आया तब गुरुजी ने फिर से पूछाः

"क्या लगा दिया?"

"हाँ साँई !"

"अच्छा बेटा ! अब ध्यान रखना।"

इन 'ध्यान रखना' शब्दों में कितनी करूणा थी ! अब बिच्छू के पौधे का ध्यान रखना तो ठीक, मेरे सामने जो भी आते हैं उन सबका ध्यान रखने का भाव गुरुकृपा के कारण बन जाता है। गुरुदेव के शब्द तो केवल दो ही थे परन्तु उनके पीछे जो करूणा एवं प्रेरणा छुपी हुई थी उसका मापतौल कोई नहीं कर सकता।

एकान्त में कभी गुरुदेव की कृपा का, उनकी उदारता का, उनकी सूक्ष्म दृष्टि का स्मरण होता है तब मेरा हृदय बोल उठता हैः

"हे गुरुदेव ! ईश्वर ने तो हमें संसार में भेजा है काम-क्रोध के साथ परन्तु आपने हमें निष्कामी बनाया एवं क्रोध से छुड़ाया। ईश्वर ने तो हमें कर्मों के बन्धन में डाला परन्तु हे गुरुदेव ! आपने उन कर्म बन्धनों को काट डाला। प्रकृति ने हमारे बन्धन बनाये और हे गुरुदेव ! आपने हमारे लिए मोक्ष बनाया। संसार ने तो हमें चिन्ताएँ दीं परन्तु आपने हमें आनन्द दिया। नाते रिश्तेदारों ने हमारे लिए जवाबदारियाँ बनाईं परन्तु आपने हमें सभी जवाबदारियों से पार करके शुद्ध स्वरूप में स्थिति करा दी।

हजार-हजार जन्मों के माता-पिता हमें जो चीज न दे सके, लाखों-लाखों मित्र हमें जो चीज न दे सके, करोड़ों-करोड़ों जन्मों के परिश्रम से भी जो चीज हमें न मिल सकी वह चीज हे गुरुदेव

! आपके मानसिक सान्निध्य से, आपकी शारीरिक निकटता से एवं बौद्धिक प्रेरणा से हमें मिली है।

हे गुरु महाराज ! आपके श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम ! आप जहाँ भी, जिस रूप में भी हमारा जैसा भी उपयोग करना चाहो.... ये तन, मन, बुद्धि आपके आधीन हैं। पुनः पुनः आपके श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम...."

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गुरुसेवा का फल

सदगुरु के द्वार पर रहकर जो भक्त, शिष्य, साधक निष्काम भाव से सेवा और साधना करते हैं वे पुण्य कमा लेते हैं।

उपलेटा में मेरे गुरुदेव एक शिष्य थे भोजराज। श्री गुरुदेव के दैवी कार्यों में वे खूब तत्परता से सेवा करते थे। सेवा करते-करते भोजराज गुरुदेव की नजरों में आ गये थे। स्वामीजी वेदान्त एवं तत्त्वज्ञान का सत्संग करते, परन्तु उसमें भोजराज की बहुत रूचि नहीं थी। उनका मन सदा सेवा में ही लीन रहता। स्वामी जी जब सत्संग करते तब वे हमेशा वाटिका की व्यवस्था में ही रहते। वे केवल स्वामीजी की प्रसन्नता एवं सेवा ही चाहते थे। ज्ञान की बातें तो हम सुनते और वे सदा सेवा में लगे रहते।

मेरे गुरुदेव एक बार श्रीकृष्ण गौशाला, शाहगंज, आगरा में रुके हुए थे। मैं भी उस समय वहीं था। दोपहर को भोजन का समय हुआ। इतने में ही गुरुजी के पास उपलेटा में रहने वाले भोजराज के पुत्र द्वारा भेजा गया तार आयाः

"मेरे पिता जी का अकस्मात देहावसान हो गया है।"

गुरुजी ने भोजन नहीं किया और तुरन्त ही तलघर में चले गये। एक घंटा... दो घंटे... तीन घंटे... चार घंटे.... शाम हो गई परन्तु श्री गुरुदेव भोजन के लिए बाहर नहीं निकले। एक भक्त ने आकर पूछाः

"स्वामीजी अभी तक भोजन क्यों नहीं करते?"

तब एक शिष्य ने जवाब दियाः

"मरने वाले सज्जन गुरुदेव के निकट के भक्त थे। उनकी आध्यात्मिक यात्रा पूरी नहीं हुई थी और वे बीच में ही चले गये। मृत्यु के बाद अब वे लोक-लोकान्तर में न भटक जायें, इसलिए गुरुदेव एकान्त में बैठकर सूक्ष्म जगत में उनकी सदगति की व्यवस्था कर रहे हैं।

भोजराज के मित्र, परिवार, धन-सम्पत्ति कुछ भी भोजराज के सहायक न हुए, न ही कोई साथ गया, परन्तु ब्रह्मज्ञानी महापुरुष की की गयी अल्प सेवा भी कितना महान् फल देती है !

भोजराज तो मृत्यु के आधीन हो गये परन्तु स्वामी जी ने उनकी मृत्यु के बाद के जीवन का भी ख्याल रखा।

योगी-महात्मा अपनी योग-पद्धति से सूक्ष्म जगत में कार्य करते हैं। मृतक के स्वभाव का अनुमान करके, ध्यान में बैठकर योगबल से वहाँ पहुँच जाते हैं। जबकि सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापक ब्रह्मज्ञानी तो मौन होकर, अपने सत्य-संकल्पों को वातावरण में प्रसारित करके जीव का कल्याण कर देते हैं। जिन्हें एक बार ब्रह्मबोध हो जाता है उन्हें अन्तवाहक शरीर से दौड़-धूप करने की जरूरत नहीं रहती।

स्वामी जी घंटो तक समाधि में बैठे रहे। दूसरे भक्तों को स्वामी जी की यह लीला समझ में न आयी परन्तु मुझे उसका संकेत हुआ था। जो फल सौ अश्वमेध यज्ञ करने से भी नहीं मिलता वह फल ब्रह्मज्ञानी की छोटी-मोटी सेवा एवं प्रसन्नता से ही प्राप्त हो जाता है।

कितनी करुणामय लीला थी पूज्यपाद सदगुरु स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू की ! वे अपना भोजन छोड़कर अपने शिष्य का कल्याण साध रहे थे। गुरु अपने शिष्य के कल्याण का कितना ध्यान रखते हैं इसे संसारी क्या जानें? ब्रह्मवेत्ता गुरु की शरण एवं उनका ज्ञान मृत्यु के बाद भी हमारी रक्षा करती है।

गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम्।

इस प्रकार भोजराज द्वारा की गई, पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू की सेवा-भक्ति का इससे उत्कृष्ट दूसरा कौन-सा फल हो सकता है? जिस सतशिष्य के भवतारक पूज्य बापू स्वयं हो, उसे भला डूबने का भय कैसे हो सकता है?

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

लौकिकता में थी अलौकिक की खबरें

एक बार रक्षाबंधन के पर्व पर परम पूज्य सदगुरुदेव अमदावाद में पधारे हुए थे। जूनागढ़ से एक प्रोफेसर किसी काम से अमदावाद आये थे। रक्षाबन्धन का अवसर देखकर वे रुक गये एवं पूज्य श्री को उन्होंने राखी बाँधी।

उस समय मेरे मन में ऐसा भाव उठाः 'साँईं को अब राखी बँधवाने की क्या जरूरत है?' परन्तु अब पता चलता है कि कोई जरूरत न होने पर भी सामने वाले के प्रेम को स्वीकारना पड़ता है। पूर्ण निष्काम होने पर भी भाविकों के भावपूर्ण व्यवहार को स्वीकारने से भाविकों के जीवन में कोई अलौकिक घटना बन जाती है। यही संतों की सहजता और सरलता है। लौकिकता से परे होने के बावजूद लौकिक व्यवहार में आने से उन्हें कोई हानि नहीं होती।

सच्चा प्रेम तो संत और केवल संत ही कर सकते हैं। गृहस्थियों को लौकिक उत्सवों के निमित्त से प्रवत्तिमय जीवन में से हटने का मौका मिलता है और संत के साथ पहचान हो, संबंध

हो, तो वह संबंध एक दिन परमात्मा के साथ जरूर मिलवा देता है। नहीं तो, हिमालय के एकान्त में, ईश्वरीय मस्ती में रमण करने वाले संत को भला क्या राखी और क्या तिलक? क्या मेवा-मिठाई लेना और पुनः सभी को प्रसादरूप में बाँटना? व्यर्थ का बोझ उठाना...?

ऐसा होने पर भी वे लोग व्यवहार में आते हैं, लोगों का प्रेम और भेंट स्वीकार करते हैं वह इसी एक शुभकामना से कि लोग एक दिन जरूर उनके प्रभुमार्ग पर चलने की बात को स्वीकार लें। यह उनकी अनुकम्पा है, सरलता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

चलती गाड़ी को रोक दिया

कच्छ में आदिपुर के पास गोपालपुरी स्टेशन है। वहाँ किसी रेलवे के अधिकारी के यहाँ गुरु महाराज श्री लीलाशाहजी बापू पधारे। वापस लौटाने के लिए कार लाने में थोड़ी देर हुई। पूज्य बापू ने कहाः

"आदिपुर यहाँ से 3-4 मील ही दूर है न? चलो, हम चलते-चलते ही वहाँ पहुँच जायें।"

पूज्य श्री को पैदल घूमने का तो शौक था ही। इतने में उन्होंने देखा कि गोपालपुर स्टेशन से सीटी बजाकर ट्रेन चली। पूज्य श्री ने पूछाः

"यह गाड़ी कहाँ जायेगी?"

उस ऑफिसर ने जवाब दियाः

"यह गाड़ी आदिपुर जायेगी.... अपने आश्रम के पास ही।"

"तो फिर चलो, इसमें ही बैठ जायें।"

"परन्तु साँई ! उसे तो सिग्नल भी मिल गया है और उसने प्लेटफार्म भी छोड़ दिया है।"

"तो इसमें क्या हुआ? हमको तो अभी दिख रही है न? उसे कह की खड़ी रहे और तू रेलवे का ऑफिसर है। तू क्यों नहीं कहता की खड़ी रह?"

"बाबा ! मैं यहाँ बोलूं तो इंजन कहाँ सुनने वाला है"

"अरे ! तू बात काटता है? मेरी बात तो मान। उसे कहः रुक जा... रुक जा....

ऑफिसर ने दूर जाती गाड़ी को सम्बोधित करके कहाः

"ऐ गाड़ी ! रुक जा.... गाड़ी ! रुक जा.... साँई कहते हैं - रुक जा...।"

क्या पता क्या हुआ, गाड़ी रुक गई। ड्राइवर ने लाख प्रयत्न किए किन्तु गाड़ी नहीं चली। पूज्यश्री एवं वह ऑफिसर फर्स्ट क्लास के कम्पार्टमेन्ट में जा बैठे। वह ऑफिसर बेचारा स्वामी जी के आगे आदर एवं अहोभाव से झुक पड़ाः

"साँई ! आपकी लीला न्यारी है !"

"अरे ! तू टिकिट तो ले आ।"

"महाराजश्री ! टिकिट की कोई जरूरत नहीं है।"

"तुझे तो कोई जरूरत नहीं है। तू तो रेलवे का ऑफिसर है। मैं थोड़े ही रेलवे का ऑफिसर हूँ। जा, टिकिट ले आ।"

"परन्तु साँई ! मैं टिकिट लेने जाऊँ और गाड़ी चल पड़ी तो?"

"अरे ! तू फिर बात काटता है? जा, टिकिट लेकर आ।"

वह ऑफिसर टिकिट लेने गया। टिकिट लेकर पुनः आकर बैठ गया। तब पूज्यश्री ने कहाः

"अरे ! ऐसे कैसे बैठ गया है? तूने गाड़ी को रोका है तो अब ब्रेक खोल डाल। तूने इसे खड़ी रहने के लिए कहा था न? अब इसे चलने की आज्ञा दे। वहाँ बेचारा ड्राइवर परेशान हो रहा होगा कि गाड़ी क्यों नहीं चलती? क्या कारण होगा? देख, लोग भी सब नीचे उतर रहे हैं। ले यह कमण्डल। इसमें से पानी लेकर इंजन पर छींटे मार और बोलः 'चल माई ! चल।' और यह चलेगी। ट्रेन के ड्राइवर को भी कहना कि गाड़ी बिगड़ी नहीं है।

......और हुआ भी ऐसा ही। ऑफिसर ने पूज्यश्री के कथनानुसार किया और गाड़ी चलने लगी।

आप लोग इस बात को बहुत बड़ी मानते हो परन्तु मेरे गुरुदेव इस बात को जरा-भी बड़ी नहीं मानते थे। मैं भी इसे बड़ी नहीं मानता। मैं जब साधना करता था तब ऐसे चमत्कार होते ही रहते थे। ऐसे चमत्कार होना यह कोई बड़ी बात नहीं है। सबसे बड़ी बात है ब्रह्मविद्या। सबसे बड़ी बात है आत्म-साक्षात्कार। उसे सिद्ध कर लेने के बाद, प्राप्त कर लेने के बाद फिर यह सब मदारी के खेल जैसा लगता है। हालाँकि यह मदारी के खेल जैसा नहीं है। यह तो आध्यात्मिक, यौगिक सत्य-संकल्प का बल है।

यदि योगी प्राणों को सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम कर लें तो वे सूर्य, चन्द्र, ग्रह एवं नक्षत्रों को गेंद की तरह अपनी जगह से खिसकाकर, अपनी इच्छा के अनुसार चला सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने 'योगविषयक प्रवचन' में जिस सामर्थ्य की बात कही है वह सत्य है। योगी के स्मरण करने मात्र से देवता भी उनके आगे हाथ जोड़कर खड़े रह जायें ऐसा वे पूर्ण योगी कर सकते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सूक्ष्म परमार्थ दृष्टि

आबू में एक नल गुफा थी। उसके पीछे एक शंकर गुफा थी। पहले वहाँ एक बड़ी शिला थी। वहाँ कुछ चुनाई का काम करने की जरूरत थी। उसके लिए पूज्य गुरुदेव ने पत्थर वगैरह इकट्ठे किये और एक मिस्त्री को चुनाई करने के लिए बुलाया। मिस्त्री को मदद करने के लिए

मजदूर की जगह पर पूज्य गुरुदेव स्वयं ही काम करने लगे। चिकनी मिट्टी का गारा बनाकर, तसले भर-भरकर मिस्त्री को देने लगे और वह नादान मिस्त्री भी 'लाओ महाराज ! लाओ महाराज !' कहकर उनके पास से तसले मँगवा रहा था। इस प्रकार इन महाराज ने अपने सिर पर तसले उठा उठाकर उस दीवार का चुनाई का काम पूरा करवाया। चुनाई का काम तो पूरा हो गया। अब दरवाजा लगाना बाकी रहा। अतः दरवाजा खरीदने के लिए गुरुदेव कबाड़ी बाजार में गये। वहाँ साढ़े तीन फीट चौड़ा और 5 फीट लम्बा, भारी लोहे का एक पुराना दरवाजा लगभग 50 रूपये में खरीदा। एक मजदूर को दरवाजा उठाने के लिए बुलाया तो लोभी मजदूर ने पैसे ज्यादा माँगे। पूज्य गुरुदेव ने कहाः

"चल ! दरवाजा मेरे सिर पर रख दे।"

पूज्य गुरुदेव 80 वर्ष की उम्र में लोहे के भारी दरवाजे को अपने सिर पर रखकर आबू के बाजार से दो कि.मी. दूर नल गुफा तक उठाकर ले आए। पूज्य गुरुदेव ने सोचाः

"दो रूपये फालतू के क्यों बिगाड़ना? वैसे भी मुझे मजदूर के साथ चलकर तो आना ही पड़ता तो फिर मैं ही दरवाजा उठाकर लाया तो क्या फर्क पड़ा?"

बाह्य दृष्टि से तो संसारियों को यह देखकर ऐसा ही लगेगा कि व्यवहार में स्वामी जी हमारे जैसे ही हैं परन्तु पूज्य गुरुदेव ऐसा मानते थे कि लोग श्रद्धा, भक्ति से जो चीजें परमार्थ के लिए संतों को भेंट देते हैं उन चीजों का सदुपयोग, रक्षण और संवर्धन करना हमारा कर्त्तव्य है। वह दान समाज की धार्मिक सम्पत्ति है। उसका उपयोग समाज क लिए ही होना चाहिए। यदि उसका दुरुपयोग होता है तो हम पर बोझा चढ़ता है।

यह प्रसंग बताता है कि परमार्थ के लिए पूज्य गुरुदेव क कितनी दीर्घ और सूक्ष्म दृष्टि थी ! हमारा सांसारिक व्यवहार तो दिखनेवाले स्थूल लाभ पर ही चलता है जबकि महापुरुषों की नजर में समाज का हित, समाज का परम कल्याण ही मुख्य होता है। वे जब इस प्रकार का व्यवहार करते हैं तब भी संसारी लोग उनके व्यवहार की तुलना करके उन्हें संसारी जैसा मानने की भूल कर बैठते हैं। यहाँ यदि थोड़ी-सी भी असावधानी रह जाये तो महापुरुषों का ऐसा व्यवहार देखकर साधक की श्रद्धा में कमी आने की संभावना रहती है और कई बार तो साधक की कसौटी के लिए महापुरुष ऐसा व्यवहार जान-बूझकर करते हैं। इसीलिए कहा गया हैः

"गुरु को तत्त्वदृष्टि से देखो, देहदृष्टि से नहीं। इसी में साधक का कल्याण है।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

शाहों के शाह

अष्टसिद्धियाँ-नवनिधियाँ और कुबेर का पूरा भण्डार भी आत्मारामी, गुणातीत एवं अनासक्त महापुरुषों के आगे तृण के समान हैं। उनकी चेष्टाएँ स्वाभाविक, सहज एवं विनोदमात्र होती है।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज का पूरा जीवन वेदान्त का जीता-जागता संदेश है। उनके जीवन में घटित घटनाओं से यह सिद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेव उस समय नैनिताल में थे। वे रोज सुबह करीब छः बजे घूमने जाते और 8 बजे तक वापस आ जाते। एक दिन गाँधीधाम के एक करोड़पति सेठ तोलाणी पूज्य गुरुदेव के दर्शन के लिए नैनिताल आये। गाँधीधाम में उनके नाम से समाजसेवा के लिए कई संस्थाएँ, पेढ़ियाँ और एक-दो करोड़ का कॉलेज चलता है। उन्होंने आश्रम में आकर पूज्य गुरुदेव के दर्शन करने की अपनी इच्छा बताई। आश्रम के साधक भाई ने उन्हें पूज्य गुरुदेव के घूमने के नित्यक्रम के बारे में बताया। उस दिन पूज्य गुरुदेव सुबह जल्दी ही घूमने निकल गये थे। अतः उनके जल्दी वापस आने की संभावना थी। तोलाणी सेठ तो दर्शन के इन्तजार में आठ-साड़े आठ, नौ-साढ़े नौ बजे तक खड़े-खड़े राह देखते रहे.... आखिर जब दस बजे तब पूज्य गुरुदेव दूर से आते दिखाई दिये। पूज्य गुरुदेव तो एक हाथ से सिर पर बबूल और थूहर की लकड़ियों का गट्ठर पकड़कर और दूसरे हाथ में कमण्डल लेकर मजे से आ रहे थे। रसोईया वीरभान तो यह देखकर अकुलाया और दौड़ता-दौड़ता पूज्य गुरुदेव के पास जाकर कहने लगाः

"साँई ! आप यह क्या करते हैं? तोलाणी जैसे सेठ आपके दर्शन के लिए कब से राह देखते हुए खड़े हैं और आपने इतनी देर कर दी?"

पूज्य गुरुदेव ने जवाब दियाः "आया है तो भले आया, बैठेगा।"

वीरभानः "यह सब छोड़िये।"

पूज्य गुरुदेव ने धीरे से कहाः "क्यों छोड़ूँ? वहाँ ये सब सूखी लकड़ियाँ पड़ी थीं। हमें रोटी पकाने के काम में आयेंगी इसलिए मैं वहाँ ये लकड़ियाँ बीनने बैठ गया।"

वीरभानः "अरे ! तोलाणी जैसे सेठ आपके दर्शन के लिए आये हैं और आप दो पैसे के ईंधन के लिए सिर पर गटठर उठाकर चलकर आ रहे हैं.... यह कैसा लगेगा?"

पूज्य गुरुदेव ने कहाः "मैंने कहाँ उसे बुलाया था। उससे बोलो चला जाए। मैं तो मौज से आऊँगा।"

किसी संसारी के आगे यदि ऐसा कोई करोड़पति सेठ आता तो वह उस सेठ का भव्य स्वागत करके उसे खूब मान देता। 'सेठ जी.... सेठजी...' करके उसके आगे-पीछे घूमता। उसे खुश करने का प्रयत्न करता और पीछे से उसकी पहचान का लाभ उठाता रहता, परन्तु ब्रह्मज्ञानी संतों के आगे तो गरीब-धनवान, मूढ़-विद्वान सभी समान होते हैं। उनके लिए गंगाजल और नाली का पानी दोनों समान हैं। ऐसे महात्मा को मनुष्यों के संग की अपेक्षा एकान्त, निभिमानता, अकिंचिनता जैसा सुख देती है वैसा सुख बड़ी समृद्धि या साम्राज्य भी नहीं दे सकते। उन्हें इनका कोई आकर्षण नहीं होता।

चाह नहीं, चिन्ता नहीं, मनवा बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए वो शाहन का शाह।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

उन मधुर दिनों की याद...

ज्ञानी की सेवा करने से ज्ञानी की कृपा बरसती है और अन्तःकरण में ज्ञानी के दिव्य गुण जल्दी प्रगट होने लगते हैं। मैंने यदि मेरे गुरुदेव की सेवा न की होती तो क्या उन्हें कोई कमी पड़ती? क्या उनका कोई काम रुक जाता? नहीं, मैंने सेवा की तो मुझे ही लाभ हुआ।

मैं जब गुरुजी के पास गया था तब वहाँ मुझे साढ़े चार फीट ऊँची और 5 फीट लम्बी कुटिया रहने के लिए मिली थी। उसकी छत नीची और दरवाजा छोटा होने की वजह से झुककर ही अन्दर जाया जा सकता था। सोते समय पैर भी ठीक से लम्बे नहीं कर सकता था। मेरे पास जो थोड़े बहुत पैसे थे उनमें से मूँग और नमक मँगवाता। दिन में एक बार मूँग उबालकर उसमें नमक डालकर पी जाता। शुरुआत से ही मुझे ऐसी तितिक्षाओं से गुजरना पड़ा था।

मूँग बनाने के समय को छोड़कर बाकी के समय में मै पूज्य गुरुदेव के नाम से आयी हई भक्तों की चिठ्ठियाँ पढ़कर गुरुदेव को सुनाता और गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार उनका जवाब देता। बगीच में पानी पिलाता। अतिथियों के लिए जिनमें भोजन बनता - उन बर्तनों को साफ करता। बाजार में से सब्जी खरीदकर लाता। इसके अलावा कई छोटे-बड़े काम करता। बाकी के समय में ध्यान, ईश्वरचिन्तन करता और सदगुरुदेव जब सत्संग करते तब सत्संग सुनता। मैं इस बात की हमेशा पूरी सावधानी रखता था कि कोई भी कार्य ऐसा न हो जाय कि गुरुदेव मुझ पर नाराज हो जायें। मैं गुरुदेव के सामने बहुत ही कम, मर्यादित एवं जितना आवश्यक होता उतना ही बोलता।

एक बार गुरुजी मौज में थे तब मुझे विनोद करने का मौका मिला। मैंने गुरुदेव से पूछाः "गुरुदेव !

ब्रह्म गिआनी कउ खोजहि महेसुर।
नानक ब्रह्म गिआनी आपि परमेसुर।।

ऐसा गुरुवाणी में आता है।

गुरुदेव ने कहाः "हाँ आता है।"

मैंने कहाः "उन महेश्वर को ब्रह्मज्ञानी मिले कि नहीं? यदि नहीं मिले हों तो मैं अभी जाऊँ और उन्हें बता दूँ।"

गुरुदेव तुरन्त बोलेः "चुप कर।"

अभी भी जब वे मधुर दिन याद आते हैं तब मेरा हृदय आह्लादित हो उठता है ! गुरुदेव के चरणों में बैठकर जो आनन्द आता था, आहाहा...!!! वह आनन्द और कहाँ ! गुरुदेव के चरणों में बैठकर सत्संग सुनने का जब सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन दिनों को याद करता हूँ तो लगता है कि आह ! वे दिन अभी मिले होते तो कितना अच्छा होता?

गुरु बनने की अपेक्षा गुरुदेव के चरणों में बैठना ज्यादा सुखद है... कल्याणकारी है... आनन्ददायक है....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भगवान की चोरी या भगवान की प्राप्ति?

तुम अकेले 50 वर्षों तक साधना करते रहो, मंदिर-मस्जिदों में जाते रहो, पूजा-पाठ करते रहो, आरती करते रहो, परन्तु आखिरी लक्ष्य की सिद्धि हासिल करना बाकी रह जाता है। भक्त कवि नरसिंह मेहता ने गाया हैः

ज्याँ लगी आत्मतत्त्व चिन्यो नहीं, त्याँ लगी साधना सर्व जूठी।

अर्थात् जब तक आत्मतत्त्व को नहीं पहचानता तब तक सब साधना अधूरी है।

किसी भी जीवन्मुक्त संत के सान्निध्य में रहकर साधना करने से साधना में तीव्र प्रगति होती है और उसके फलस्वरूप साधक की जो अवस्था आती है उसका वर्णन करते हुए कबीरजी कहते हैं-

मन मेरो पंछी भयो, उड़न लाग्यो आकाश।
स्वर्गलोक खाली पडयो साहिब संतन के पास।।

मैं पहली बार नया-नया जब गुरुजी के पास गया था तब गुरुजी का व्यवहार आश्चर्यजनक लगता था। बाद में पता चला कि यह तो उनकी करूणा-कृपा थी कि वे हमारे सामने बिल्कुल सहज अवस्था में रहते थे, जिससे हम उनके ऊँचे अनुभव को समझ सकें और हम भी अनुभव कर सके। कभी-कभी तो गुरुदेव का इतना कठोर व्यवहार होता था कि यदि कोई अभागा होता तो उसी समय बिस्तरे-पोटले बाँधकर भाग जाता। संतों ने इसीलिए कहा हैः

हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायरनुं काम जो ने।

ईश्वरीय मार्ग शूरवीरों का मार्ग है, उसमें कायरों का काम नहीं। साधनाकाल एक भयंकर समरांगण है। कोई पुण्याई रही होगी और गुरु की कृपा हुई तो मैं टिक सका। ब्रह्मज्ञानी गुरु के द्वार पर टिके रहना यह कोई मजाक की बात नहीं है। उनकी तेज आवाज, उग्र रूप र कठोर व्यवहार देखकर कोई ढीला-ढाला साधक तो एक घंटा भी न रह सके। इसीलिए तो मेरे गुरुदेव के पास ज्यादा साधक न टिक सके।

अरे ! गुरुदेव ऐसी-ऐसी डाँट लगाते, ऐसा-ऐसा व्यवहार करते कि तुम्हें क्या-क्या बताऊँ?

उस समय मेरा नित्यक्रम था कि शिवजी की पूजा करके, उनको पानी चढ़ाकर ही फिर मैं पानी पीता था। एक दिन शिवजी और शिवजी के पूजन की सामग्री की चोरी करवा दी गयी। जिन लोगों ने चोरी की थी उन्हें गुरुजी सहयोग दे रहे थे और मेरी मजाक उड़ा रहे थे। हालाँकि

शिवपूजा करना और जल चढ़ाना कोई खराब काम नहीं है। मैं नहाकर फिर शिवजी को नहलाता। अपने हाथ से भोजन बनाता और पहले शिवजी को भोजन कराकर फिर मैं भोजन करता। अब वे शिवजी गुम हो गये।

एक गुरुभाई ने गुरुजी से बात कीः "बापू ! बापू ! आसुमल उदास है। कहता है कि मेरे भगवान कहीं चले गये... किसी ने चोरी कर ली। बापू ! किसी ने उसके भगवान की चोरी की।"

पूज्य गुरुदेव ने हँसते हुए कहाः "अरे ! भगवान की चोरी हो गई। वाह भाई वाह !"

ऐसा करके गुरुदेव ने मेरा खूब मजाक उड़ाया। एक तो सारा दिन मैंने कुछ खाया नहीं था। ऊपर से भगवान की चोरी हो गई। दूसरी तरफ पूज्य गुरुदेव भी मजाक उड़ा रहे थे। कैसा लगे?

'ये तो कोई महाराज हैं?' ऐसा सोचकर मैंने बेवकूफी की होती तो....?

परन्तु ऐसा नहीं हुआ.... यह भी गुरुदेव की कृपा थी। बाद में पता चला कि बाहर के भगवान में उलझे रहने के लिए ब्रह्मज्ञानी गुरु का द्वार नहीं है। बाहर के भगवान से पार वास्तविक भगवदस्वरूप में स्थिति करवाने के लिए गुरुदेव ने ही यह सब खेल करवाया था। कैसी कल्याणकारी और विलक्षण होती है उनकी अनुकंपा !

ब्रह्मज्ञानी गुरुदेव के एक-एक वाक्य का, एक-एक चेष्टा का रहस्य कितना सूक्ष्म होता है उसका पता सामान्यजन को कैसे लगा सकता है?

ढूँढे देश-विदेश में, घर हीरा की खान।
सदगुरु बिन कौ खानकी, करवावे पहिचान।।

जो चीज माँ नहीं दे सकती, जो चीज पिता नहीं दे सकते, पति नहीं दे सकता, पत्नी नहीं दे सकती, मित्र नहीं दे सकता, सांख्यदर्शन और योगदर्शन, कर्मकाण्ड और उपासना नहीं दे सकते वही चीज वेदान्तनिष्ठ महापुरुष हँसते-हँसते दे देते हैं। वे स्वयं तो देहाध्यास से परे हैं और दूसरों को भी उत्साह देकर, जरूरत पड़े तो धक्का मारकर भी ज्ञान के एवरेस्ट शिखर पर पहुँचा देते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जिस कर ने झुलाया पालना....

आज हम इस सत्संग-मंडप में, इतनी विशाल संख्या में भगवदज्ञान की महिमा को सुन पा रहे हैं इसका सर्वाधिक श्रेय जाता है एक वृद्धा माँजी के पास... और वे माँजी भी कैसी? अँगूठाछाप। वे वृद्धा माँजी थीं मेरे प्यारे गुरुदेव स्वामी श्री लीलाशाह जी महाराज की दादी माँ। दादी मां बहुत वृद्ध थीं। आँखों से बराबर दिखता भी नहीं था और जर्जर शरीर के कारण घर का

काम भी अच्छे से नहीं हो सकता था। इसलिए बहुओं की झिड़कियाँ हमेशा सुननी पड़ती थीं। बहुएँ कहतीं-

"यह बुढ़िया कुछ करती नहीं है। सारा दिन खों-खों करती रहती है..." इस प्रकार का बहुत कुछ वे सुनाती रहतीं।

दादी माँ शरीर की जर्जरित अवस्था में करती भी क्या? फिर भी उन्होंने जो किया, उसका फल हम सब अभी चख रहे हैं। दादीमाँ भले अनपढ़ थीं परन्तु उनकी समझ सूक्ष्म थी। अपने नन्हें-से पौत्र को गोदी में लेकर बैठी होतीं अथवा उन्हें पालना झुला रही होती तो कहतीं-

"बेटा ! ये सब जो अपमान करते हैं वे मेरा अपमान नहीं करते। वे तो इस देह का अपमान करते हैं, इस चोले का अपमान करते हैं। मैं तो इस देह से परे हूँ। मान-अपमान तो मन के खेल है। राग-द्वेष सब बुद्धि में हैं। भूख-प्यास तो प्राणों का धर्म है। मैं सदा चैतन्यस्वरूप हूँ। मैं सदा साक्षी, नित्य मुक्त आत्मा हूँ। जो मुझे नहीं पहचानते वे मेरा अपमान कैसे कर सकते हैं। बेटा ! तू भी ऐसा ज्ञान समझ लेना, पचा लेना.... तो तू भी मान-अपमान से पार हो जायेगा। तू अपने शुद्ध चैतन्य तत्त्व में स्थिर हो जाना। मान-अपमान का असर दो लोगों को नहीं होता। एक ज्ञानी को दूसरा मूढ़ को। बीच में रहने वाले सभी परेशान होते रहते हैं। बेटा ! तेरा जन्म ऐसे तुच्छ भावों में बहने के लिए नहीं हुआ। जो मुझे नहीं पहचानते वे मेरा अपमान कैसे कर सकते हैं?"

ऐसे उच्चतम विचारों से दादीमाँ बालक लीलाराम के संस्कारों को दृढ़ करती रहती थीं। आज के संसार में तो..... "मेरा बेटा डॉक्टर बनेगा.... खूब पैसे कमायेगा... बंगला बनायेगा.... और गाड़ी चलायेगा...' ऐसे भौतिक सम्पत्ति के संस्कारों से बालक का सिंचन करते हैं, पालन-पोषण करते हैं।

बालक लीलाराम पर उन वृद्धा दादी माँ के संकल्पों एवं संस्कारों ने ऐसा शक्तिशाली काम किया कि बारह वर्ष की कोमल वय में ही वे गृहत्याग करके परम तत्त्व की खोज में निकल पड़े और उन्हीं होनहार बालक के परम तत्त्व के ज्ञान का प्रसाद आज आपके और मेरे हृदय को पावन कर रहा है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ज्ञानियों की लीला

पूज्य गुरुदेव के साथ हम हल्दवानी से हरिद्वार जाने के लिए निकले थे। मुरादाबाद से गाड़ी बदलकर देहरादून की गाड़ी पकड़नी थी। हमारी गाड़ी थोड़ी देर से पहुँची। देहरादून वाली गाड़ी जिस प्लेटफार्म से निकलने वाली थी, वह प्लेटफार्म काफी दूर था। हमारे साथ पूज्य गुरुदेव

का, रसोई का, साहित्य वगैरह का सामान था। हम जल्दी-जल्दी सामान को उस प्लेटफार्म पर ले जाने लगे जिस पर देहरादून की गाड़ी खड़ी थी, परन्तु इतने में टी.टी. ने सीटी बजाकर हरी झण्डी दिखाई। मैंने टी.टी. से कहाः

"हमारी तीन टिकिटें हैं और हम फर्स्ट क्लास के पैसेन्जर हैं। हमारी टिकिटें इस गाड़ी के कनेक्शन की टिकिटें हैं। हमारा सामान आ रहा है। केवल एक-दो मिनट के लिए रुक जाओ।"

टी.टी. बोलाः "बाबा ! यह कोई बैलगाड़ी नहीं है कि आपका सामान आये तब तक गाड़ी खड़ी रखूँ?"

इतने में पूज्य गुरुदेव पधारे। उन्होंने भी टी.टी. से प्रार्थना कीः "अरे साहब ! जरा मेहरबानी करो। सामान आ जाये इतनी ही देर है।"

कच्छ में गोपालपुरी स्टेशन पर जिन ब्रह्मज्ञानी महापुरुष के संकल्पमात्र से ट्रेन रुक गई थी उन्हीं महापुरुष के संकल्प से हरी झण्डी वाला हाथ भी रुक सकता था, परन्तु वे ही ब्रह्माण्ड के स्वामी यहाँ टी.टी. को हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहे थे ! कैसा ज्ञानी का व्यवहार ! बिल्कुल सरल और सहज ! किसी से प्रार्थना करें तो भी उससे परे और कठोर होकर किसी को डाँटें तो भी उससे निर्लेप !

ब्रहम गिआनी सदा निरलेप।
जैसे जल महि कमल अलेप।।
ब्रहम गिआनी का इहै गुनाउ।
नानक जिउ पावक का सहज सुभाउ।।

ब्रह्मज्ञानी की लीला अनन्त है, अनोखी है। इसीलिए तो 'सुखमनी' में भी ब्रह्मज्ञानी की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया हैः

ब्रहमगिआनी की कीमति नाहि ब्रहमगिआनी कै सगल मन माहि।
ब्रहमगिआनीका कउन जानै भेदु ब्रहमगिआनी कउ सदा अदेसु।।
ब्रहम गिआनी का कथिआ न जाइ आधा अख्खर।।
ब्रहम गिआनी सरब का ठाकुरु।।
ब्रहमगिआनी की मिति कउनु बखानै।।
ब्रहम गिआनी की मिति कउनु बखानै।।
ब्रहम गिआनी की गति ब्रहम गिआनी जानै।।

ऐसे ब्रह्मज्ञानी के, ऐसे अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों के शाह के व्यवहार की तुलना किस प्रकार किसके साथ की जाय ?

दूसरा पाटणवाला प्रसंग भी ऐसा ही अनुपम है। पाटण में पूज्य गुरुदेव का सत्संग था। सत्संग के बाद विदाई के समय शोभायात्रा का आयोजन किया गया था। जिनके दर्शन के लिए एक ओर हजारों लोग खड़े थे वे ही महापुरुष दूसरी ओर एक जामफलवाली से आधे आने के लिए

रक-झक कर रहे थे ! उन महापुरुष ने समाज की सेवा-प्रवृत्ति के लिए 'अश्वमेध यज्ञ समिति' बनाई थी जिसका काम ही ऐसे गरीब-गुरबों को घर बैठे तेल, सीधा-सामान, अनाज वगैरह पहुँचाना था। जो महापुरुष किसी के आगे कभी हाथ नहीं फैलाते थे, जो महापुरुष परहित के लाखों रूपये खैरात कर देते थे वे ही महापुरुष मात्र आधे आने के लिए एक जामफलवाली से रक-झक करें तो कैसा विरोधाभास लगता है ! वे ही महापुरुष ढाक के पत्तों को इकट्ठे करके खाद बनाते हैं। ऐसे ज्ञानी का व्यवहार कितना अनोखा है ! उन्होंने कभी भी कण और क्षण को व्यर्थ नहीं जाने दिया। वे मितव्ययी भी हैं और उदार भी हैं। चाहे जो कहो, ज्ञानियों के व्यवहार में विरोधाभास नजर आता है, किन्तु उनका व्यवहार हमेशा पूर्ण होता है। इसीलिए कहा गया हैः

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।।

अदृश्य ब्रह्म पूर्ण है। दृश्यमान जगत भी पूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म में से दृश्यमान जगत उत्पन्न हुआ है। पूर्ण ब्रह्म में से पूर्ण दृश्यमान जगत को ले लिया जाय फिर भी पूर्ण ब्रह्म ही शेष रहता है।

ज्ञानी का जीवन **'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'** होता है।

ब्रहमगिआनी की सभ ऊपरि मइआ।
ब्रहमगिआनीते कछु बुरा न भइआ।।
ब्रहमगिआनी सदा समदरसी।
ब्रहमगिआनी की दृसटि अंमृत बरसी।।

आप ज्ञानी को किसी भी दृष्टि से देखो, आपकी देखने की दृष्टि तभी पूर्ण होगी जब आप ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध होंगे। जब तक ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ तब तक आपकी दृष्टि कच्ची और अधूरी रहेगी। कभी वे आपको अच्छे लगेंगे तो कभी ऐसा लगेगा किः 'मैंने सिर झुकाने की गलती की। चलो, घर भागो।' कभी ऐसा लगेगा किः 'ईश्वर से ज्यादा ब्रह्मज्ञानी में प्रीति होनी चाहिए। ईश्वर तो कर्मबन्धन देकर भेजता है जबकि ब्रह्मज्ञानी तो कर्मबन्धन को काटते हैं। ईश्वर तो जन्म-मरण के बन्धन में बाँधते हैं जबकि ब्रह्मज्ञानी तो मुक्त करते हैं, ब्रह्म बनाते हैं।'

इसीलिए कहा गया हैः

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

गुरु गोविन्द दोनों खड़े किसके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की गोविन्द दिया दिखाय।।

इसीलिए यदि गुरु और गोविन्द दोनों साथ में खड़े हों तो पहले गुरुदेव को प्रणाम करने का आदेश कई संतों एवं महात्माओं ने दिया है।

ज्ञानी की चेष्टा में हमेशा समष्टि के हित की भावना ही विद्यमान होती है।

ब्रहम गिआनी अनाथ का नाथु।
ब्रहम गिआनी का सभ ऊपरि हाथु।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मुझे नहीं बैठना....

पूज्य गुरुदेव भक्तों के भावपूर्ण आमंत्रण को स्वीकार करके हाँगकाँग एवं सिंगापुर पधारते थे, उस समय की यह बात है। एक बार विदेश जाने के लिए विमान में बैठने का समय हुआ। पूज्य गुरुदेव विमानतल पर विमान के पास गये और तुरन्त वापस आ गये और बोलेः

"मुझे नहीं बैठना।"

हवाई अड्डे के सभी कर्मचारियों में हलचल मच गई और वे पूज्य गुरुदेव से प्रार्थना करने लगेः

"साँई ! समय हो गया है, बोर्डिंग शुरु हो गया है। यात्री हवाई जहाज के उड़ने की राह देख रहे हैं। आप अन्दर पधारने की कृपा करें। पूज्य गुरुदेव ने सहजता से जवाब दियाः

"भले समय हो गया है, मुझे नहीं बैठना। मुझे अभी नहीं जाना। फिर जाऊँगा।"

इस प्रकार बातों-बातों में हवाई अड्डे का वातावरण तंग हो गया गया और हवाई जहाज को उड़ने से एक घंटे की देर हो गई। फिर थोड़ी-ही देर में एकाएक मौसम खराब हो गया। यदि हवाई जहाज अपने सही समय से उड़ान भरता तो हवाई जहाज को अवश्य दुर्घटना का शिकार होना पड़ता। ज्ञानी के व्यवहार को, उनके संकेत को सामान्यजन क्या समझ सकते हैं?

पूज्य गुरुदेव की कृपा से ही वह हवाई जहाज और उसके यात्री बच गए। इसलिए विमानतल के कर्मचारियों एवं यात्रियों ने अपने को धनभागी माना। पूज्य गुरुदेव को प्रणाम करके गिड़गिड़ाते हुए कहना लगेः

"बाबा ! आज तुम न होते तो हम जीवित भी न होते। आपने हम सभी को बचा लिया और नया जीवन दिया।"

पूज्य बापू ने सहजता से कहाः "मुझे पता भी नहीं था, किन्तु मुझे हुआ कि नहीं जाना है, इसलिए नहीं गया।"

इस प्रकार ज्ञानी सहज में जो कुछ करते हैं वह कल्याणकारी, हितकारी ही होता है।

ब्रहमगिआनी संगि सगल उधारु।
नानक ब्रहमगिआनी जपै सगल संसारू।।
ब्रहमगिआनी के एकै रंग।

ब्रहमगिआनी कै बसै प्रभु संग।।
ब्रहमगिआनी कै नामु अधारू।
ब्रहमगिआनी कै नामु परवारू।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संत-फकीर बेपरवाह बादशाह होते हैं

'दुनिया क्या कहेगी' इसकी जरा भी परवाह न करने वाले आत्मज्ञानी महापुरुषों की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? श्रुतियाँ, पुराण एवं संतो की वाणी उनकी महिमा से ही ओतप्रोत हैं। ऐसे महापुरुष बेपरवाह बादशाह होते हैं। जिन्होंने अपने आत्मतत्त्व को, निज स्वरूप को जान लिया हो, पूर्ण रूप से उसका अनुभव कर लिया हो उनको फिर किसकी परवाह हो सकती है? वे क्यों अपने नश्वर देह के संबंधों की परवाह करें? क्यों चिंता करें? वे तो मान-अपमान, निंदा-स्तुति वगैरह से परे हो चुके होते हैं। 'लोग मेरे लिए क्या बोलेंगे? मेरे लिए क्या सोचेंगे...?' इसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं होती।

एक बार गुरुदेव पाटण में पधारे हुए थे। मुझे इस बात का पता चला तो मैं दर्शन करने के लिए पाटण गया।

एक दिन सुबह के समय गुरुदेव ब्रह्मानंद की मस्ती में मस्त होकर सत्संग कर रहे थे। उस वक्त गुरुदेव जो कुरता पहनकर आये थे, वह उलटा था। कुरते की जेबें बाहर लटक रही थीं। किसी साधक ने कहाः "स्वामीजी ! स्वामी जी ! आपने कुरता उलटा पहना है।"

गुरुदेव ने स्मित करते हुए सरलता से कहाः

"उलटा है तो भले उलटा है। हमें शादी थोड़े ही करनी है ! हम तो जो जानते हैं, उसी का उपदेश करते हैं।"

फिर पूरी बात को तत्त्वज्ञान की तरफ मोड़ते हुए उन्होंने कहाः

"ब्रह्मज्ञान के उपदेश को यदि एक बार भी पचा लिया तो फिर पूरा जगत ही स्वप्नवत् लगने लगेगा। फिर तुम चाहे उलटे कपड़े पहनो या उलटी चाल चलो, रहोगे अपने निज स्वरूप में स्थित ही।"

ऐसे छोटे-बड़े प्रसंगों का मूल्यांकन तत्त्वचिंतन के आधार पर प्रस्तुत करके, गुरुदेव हमारी निष्ठा को ब्रह्मविचार में दृढ़ करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे। सरलता से परिपूर्ण उनकी वाणी, परमात्मा के आनंद को छूकर आने वाली उनकी वाणी आज भी मुझे अच्छी तरह याद है।

परमात्मा के प्यार में बिके हुए संत-फकीर बाह्य दिखावे या जगत के आचार के विषय में बिल्कुल बेपरवाह होते हैं।

ऐसा ही एक दूसरा प्रसंग सिंध में प्रसिद्ध आला फकीर का है। वे रब की मस्ती में इतने मस्त रहते कि उन्हें पहने हुए कपड़े एवं वेश की जरा भी परवाह नहीं रहती थी। लोग उनसे कहतेः

"बाबा जी! आपके पास इतने सारे शिष्य हैं, आपकी इतनी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा है... आप थोड़ा तो ठीक-ठाक रहा करें.... यह क्या? जरा सी धोती बाँध ली... कच्छे का नाड़ा लटक रहा है.... कुछ तो विचार करें, बाबाजी !"

तब आला फकीर ने कहाः

"मैं लोगों के लिए फकीर नहीं बना हूँ और मेरे शिष्य कहें, उसके मुताबिक, उनके ढाँचे में रहकर अपना जीवन जीने के लिए बँधा हुआ नहीं हूँ। मैं किसी को गुलाम नहीं बनाता और किसी के विचारों का गुलाम भी नहीं बनता। मैं अपनी मौज में, अपनी मस्ती में रहता हूँ। दुनिया अगर मुझे खिताब दें कि 'आप अच्छे हैं' तो उससे मुझे सुख मिलने वाला नहीं है और जगत के इल्जाम मुझे दुःख नहीं दे सकते।

इल्जाम लगाने वालों ने, इल्जाम लगाये लाख मगर।
तेरी सौगात समझकर, सिर पे उठाये जाते हैं।।

मैं स्वयं आनंद का भंडार हूँ, शांति का सागर हूँ। स्वर्ग के देवता भी संतो-फकीरों के चरणों में अलौकिक शांति एवं आनंद का अनुभव करते हैं। दुनिया के मानदण्ड हमें क्या सुख देने वाले थे? हम तो आत्मिक सुख का खजाना लुटाने के लिए बैठे हैं। हम तो शाहों के शाह हैं।"

ऐसी उच्चावस्था में पहुँचे हुए फकीरों को तो भगवान का स्मरण करने की भी जरूरत नहीं रहती। इसीलिए कबीरजी जैसे आत्मानुरागी संत ने गाया हैः

भला हुआ हरि बिसर्यो सिर से टली बला।
मुख से जपूँ न कर से जपूँ उर से जपूँ न राम।
राम सदा हमको जपे हम पावे विश्राम।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भगवान के माता-पिता कौन हैं?

संतों की बाते हीं निराली होती हैं। उनकी वाणी बोधमय होती है एवं कोई-न-कोई गहरी समझ दे जाती है। संत विलक्षण होते हुए भी सरल स्वभाव के होते हैं। जब संत परस्पर मिलते हैं तो सत्संग करना यानि सत्य का संग करना नहीं चुकते।

सनकादि चार ऋषिकुमार भी नित्य सत्संग करते थे। जब वे अकेले होते तब उनमें से एक वक्ता बन जाता और बाकी तीन श्रोता बन जाते। 'श्रीरामचरितमानस' में स्वयं शंकर भगवान ने भी कहा हैः

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग।।

(श्रीरामचरित. उत्तरकाण्डः 14क)

पूज्यश्री लीलाशाहजी बापू भी जब अन्य संतों से मिलते, तब सत्संग करने का अक्सर नहीं चूकते थे।

एक बार ऐसा ही संत-मिलन हुआ था। उसमें एक पंजाबी संत नें पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू से प्रश्न पूछाः

"हम सभी के माता-पिता होते हैं। प्रत्येक मनुष्य के कोई-न-कोई माता-पिता तो होते ही हैं। तो फिर भगवान के भी माता-पिता होंगे न?"

पूज्य बापू ने कहाः "बिल्कुल।"

पंजाबी संतः "तो भगवान के माता-पिता कौन हैं?"

पूज्य बापू ने जवाब दियाः "भगवान के माता-पिता तो संत ही होते हैं। राजा दशरथ को राम प्राप्ति का उपाय संतों ने ही बताया था न!

भगवान के स्वरूप का, भगवद् तत्त्व का, भगवद-प्राप्ति का निरूपण संतों के अलावा और कौन कर सकता है?

कभी-कभार ऐसा भी कहा जाता है कि संत भगवान से भी बड़े होते हैं। भगवान संतों को अपने से भी ज्यादा महत्त्व देते हैं। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने संतों के चरण धोये थे। श्रीरामचन्द्रजी ने संतों को प्रणाम किया था। संत-पद बहुत ही ऊँचा है।

महानुभाव आत्मारामी संतों के लिए भगवान ने कहा हैः

संत मेरे मुकुटमणि।
मैं संतन को दास।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्संग-महिमा

शास्त्रों में सत्संग की महिमा खूब गाई गई है। 'श्रीरामचरितमानस' के सुंदरकांड में आता हैः

तात स्वर्ग आपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।

तुल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

हे तात ! स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों को तराजू के एक पलड़े में रखा जाये ते भी वे सब सुख मिलकर भी दूसरे पलड़े में रखे हुए उस सुख के बराबर नहीं हो सकते, जो लव माने क्षण मात्र के सत्संग से होता है।'

एक क्षण के सत्संग से जो वास्तविक आनंद मिलता है, वास्तविक सत्य स्वरूप का जो ज्ञान मिलता है, जो सुख मिलता है वैसा सुख स्वर्ग में भी नहीं मिलता। इस प्रकार, सत्संग से मिलने वाला सुख ही वास्तविक सुख है।

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी महाराज मोक्ष के द्वारपालों का विवेचन करते हुए श्रीराम से कहते हैं-

"शम, संतोष, विचार एवं सत्संग - ये संसाररूपी समुद्र से तरने के उपाय हैं। संतोष परम लाभ है। विचार परम ज्ञान है। शम परम सुख है। सत्संग परम गति है।"

सत्संग का महत्त्व बताते हुए उन्होंने कहा हैः

विशेषेण महाबुद्धे संसारोत्तरणे नृणाम्।
सर्वत्रोपकरोतीह साधुः साधुसमागमः।।

'हे महाबुद्धिमान् ! विशेष करके मनुष्यों के लिए इस संसार से तरने में साधुओं का समागम ही सर्वत्र खूब उपकारक है।'

सत्संग बुद्धि को अत्यंत सात्त्विक बनाने वाला, अज्ञानरूपी वृक्ष को काटने वाला एवं मानसिक व्याधियों को दूर करने वाला है। जो मनुष्य सत्संगतिरूप शीतल एवं स्वच्छ गंगा में स्नान करता है उसे दान, तीर्थ-सेवन, तप या यज्ञ करने की क्या जरूरत है ?"

कलियुग में सत्संग जैसा सरल साधन दूसरा कोई नहीं है। भगवान शंकर भी पार्वतीजी को सत्संग की महिमा बताते हुए कहते हैं-

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना।।

सभी ब्रह्मवेत्ता संत स्वप्न समान जगत में सत्संग एवं आत्म-विचार से सराबोर रहने का बोध देते हैं। मेरे गुरुदेव के उपदेश एवं आचरण में कभी-भी भिन्नता देखने को नहीं मिलती थी। वे हमें सदैव आत्मचिंतन में निमग्न रहने का आदेश देते थे।

शास्त्रों के अध्ययन या सत्संग द्वारा ब्रह्मचिंतन में हमारी रूचि बढ़ाते थे एवं श्रद्धा को दृढ़ करते थे।

मेरे गुरुदेव प्रायः अप्रैल माह में, गरमी के दिनों में एकांतवास के लिए नैनिताल के जंगलों में जाते थे। उसके बाद गुरुपूनम के समय पर पुनः लोकसंपर्क में आते थे। एकांतवास के दौरान् जिन्हें उनके दर्शन की तीव्र इच्छा होती, वे लोग दर्शन हेतु पहले से ही गुरुदेव से आज्ञा

मँगवा लेते। यदि गुरुदेव सम्मति देते तो ही वे लोग उनके पास जा सकते थे। ऐसा कठोर नियम था।

एकांतवास के दौरान् उनके साथ उनके शिष्यों में से दो-चार शिष्य थे जिनमें एक माली था। वह माली हमेशा वहीं रहता था। ऐसे एकांतवास के दौरान् केवल गिने-चुने शिष्यों के रहने पर भी, गुरुदेव एक भी दिन बिना सत्संग के नहीं जाने देते थे।

पूज्यश्री सत्संग करते एवं चार शिष्य सुनते। इस सत्संग में भी कभी चार की जगह केवल दो ही रहते या एक ही रहता। कई बार तो मैं अकेला ही रहता। मैं 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' जैसा ग्रंथ पढ़ता और गुरुदेव उसे सुनकर, उस पर सत्संग करते।

कई बार दुर्भाग्यवशात् मैं वहाँ न भी होऊँ, किसी जगह पर कोई आवश्यक काम से गया होऊँ, उस समय किसी जगह पर कोई आवश्यक काम से गया होऊँ, उस समय किसी अन्य के न रहने पर गुरुदेव स्वयं ही शास्त्र का अध्ययन करते एवं सत्संग करते।

कैसी थी उनकी सत्संग के प्रति निष्ठा और कैसा था सत्संग के लिए उनका आदर !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सदगुरु का स्मरण

उस समय मेरे पूज्य सदगुरुदेव के शरीर की उम्र करीब 84 साल की थी। बोरीवली (मुम्बई) में शान्ति आश्रम के निकट जंगल में पूज्य सदगुरुदेव पधारे हुए थे।

एक दिन की बात है। एक महाराष्ट्रीयन भक्त पूज्य गुरुदेव के दर्शन के लिए आया और उसने खूब भक्तिभाव से पूज्य गुरुदेव को प्रणाम किया। पूज्य गुरुदेव ने पूछाः

"क्या नाम है तुम्हारा?"

उस महाराष्ट्रीयन ने जवाब दियाः "स्वामी ! केशवानन्द।"

(अर्थात् 'स्वामीजी ! मेरा नाम केशवानंद है।')

84 साल के ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष के कान में 'स्वामी केशवानंद' शब्द पड़ते ही उनके नेत्रों से गंगा-यमुना बहने लगी। पूज्य गुरुदेव के श्री सदगुरुदेव का नाम भी 'स्वामी केशवानंद' था। अपने श्री सदगुरुदेव के स्मरणमात्र से पूज्य गुरुदेव का हृदय भावविभोर हो उठा। अश्रु उनकी आज्ञा में न रह सके... हृदय सँभल न सका।

जिन्होंने **'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'** की अपरोक्ष अनुभूति कर ली थी, अनेकों के अज्ञानपटल को जिन्होंने दूर किया था ऐसे पूज्य गुरुदेव की आँखें अपने सदगुरुदेव के स्मरणमात्र से छलक पड़ी ! कैसी होगी उनकी गुरुभक्ति और कैसा होगा उनका कोमल हृदय !

सदगुरुनो स्नेह मने वारे वाले सांभरे

पल पल करुं छुं याद रे.... सदगुरु मुक्तिदातार छे...

सदगुरु का पावन स्नेह मुझे बार-बार याद आता है। मैं पल-पल उन्हें याद करता हूँ। सदगुरुदेव मुक्ति के दाता हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सदगुरुदेव को भावांजली

"प्राणीमात्र के परम हितैषी, ज्ञानदाता, जीवन-उद्धारक, तारणहार, शांतिदाता, पुण्यदाता, योगसिद्ध, निर्दोष नारायणस्वरूप, ब्रह्मनिष्ठ मेरे सदगुरुदेव प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू के बारे में मैं सत्संग में बोल ही नहीं पाता हूँ। मैं जब उनका स्मरण करता हूँ... उनकी अनंत-अनंत लीलाएँ, कृपा, उपकार, दया को याद करता हूँ तब मेरा हृदय, मेरा दिल, मेरे भाव, मेरे आँसू मेरे कहने में नहीं रहते। उनके लिए मैं क्या बोलूँ? रहस्य समझ में आता है लेकिन समझाया नहीं जा सकता। उनकी दृष्टि में सदैव पवित्रता, प्रेम और शांति का प्रवाह बहता रहता था। उनकी ममता मुक्तिदायी, माधुर्यदायी और आनंददायी थी। मुझ बेहाल को निहाल कर देने वाले, अनाथ को सनाथ बनाने वाले मेरे सदगुरुदेव साक्षात् सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं।

लाखों-लाखों जन्म के माता-पिता जो न दे सके वह मेरे परम पिता गुरुदेव ने मुझे हँसते खेलते दे दिया। मुझे घर में ही घर बता दिया। आम जनता को परमार्थ की पगडंडी कदम रखने के लिए प्रोत्साहित करने वाली उनकी शुद्ध भावना ! परमात्मा को स्पर्श करके आनेवाली उनकी प्रभावशाली वाणी ! अलौकिक प्रेम से सबको भीगोनेवाली उनकी स्नेहपूर्ण आँखें ! वृत्ति को सुव्यवस्थित करती हुई उनके सत्संग की बातें ! जिज्ञासु की ज्ञान-पिपासा बुझानेवाली ज्ञान-सरिता एवं सत्य की अनुभूति करानेवाली उनकी क्षमता... उनकी महिमा का वर्णन कैसे करूँ? वह महिमा भावातीत है, शब्दातीत है।

हे अविद्या को विदीर्ण करने वाले, मोहपाश को काटने वाले अहं का नाश करने वाले, हृदयग्रंथि को भेदने वाले, जन्म-मृत्यु की शृंखला से मुक्त करने वाले मेरे गुरुदेव ! आपका स्मरणमात्र मुझे दीवाना बना देता है। जब तक सूर्य, चंद्र, सितारे चमकते रहेंगे तब तक आपके उपदेश से पृथ्वी पावन होती रहेगी। धन्य हैं वे लोग जो इस दैवी कार्य में सहयोगी होने का मौका खोज लेते हैं। हे मेरे तारणहार ! आप की जय-जयकार हो !"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ